॥ श्रीः ॥

व्याख्यान रत्नमाला।

उपदेशक महोपदेशक बननेके लिये

अपूर्व ग्रन्थ।

जिसमें

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डित दीनदयालुजी
शर्म्मा महामहोपदेशक पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास
साहित्याचार्य महामहोपदेशक पण्डित श्रीकृष्ण-
शास्त्री महामहोपदेशक पण्डित गोविन्दरा-
मजी शास्त्री विद्यावारिधि पण्डित ज्वाला-
प्रसाद जी मिश्र स्वामी हंसस्वरूप जी,
म० म० पं० दुर्गादत्त पं० हरिदत्तजी
शास्त्री, तथा मिसेस् एनीबेसण्ट
आदि के अद्भुत व्याख्यान हैं।

जिसको

पण्डित **बलदेवप्रसाद** मिश्रने बडे परिश्रमसे संग्रह किया.

और

खेमराज श्रीकृष्णदासने

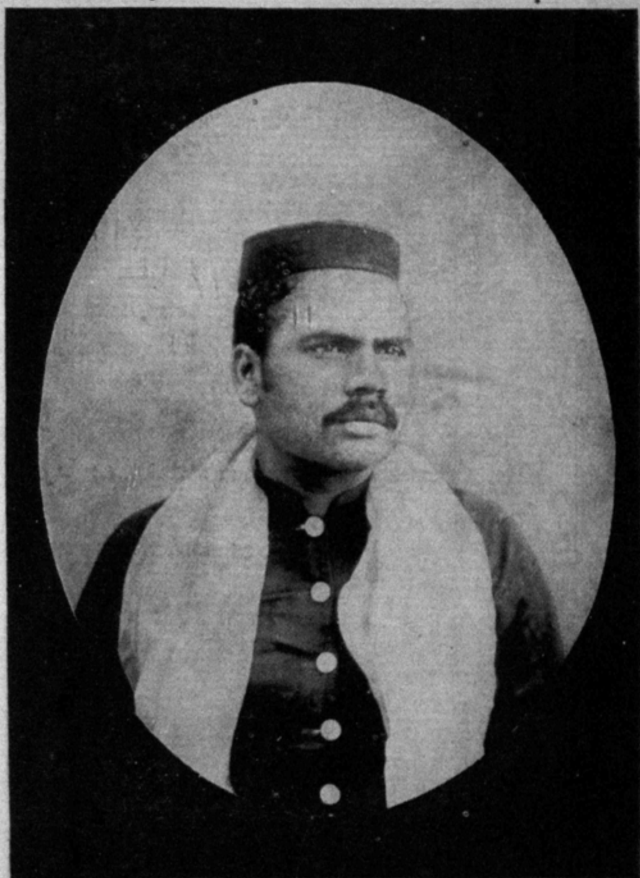
बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९६६, शके १८३१.

६.००



अनुवादक-
स्वर्गीय-पं० बलदेवप्रसाद मिश्र-मुरादाबाद.

भूमिका।

समय के प्रभाव से विधर्मियों द्वारा जब सनातनधर्म पर अनेक प्रकारके आक्षेप होने लगे तो उपदेशक महोपदेशकों ने बडे परिश्रम के साथ धर्म-सभाओं के स्थापन की नीव डाली और महामन्त्री जी तथा दूसरे विद्वानों की रसमयी वक्तृता से भारतवर्ष में सैकड़ों धर्मसभा स्थापित हुई, परन्तु महोपदेशकों की संख्या न्यून होने से सर्वत्र उनका गमनागमन नहीं होसकता था और आगे को व्याख्यानदाताओं की वृद्धि का उपाय होना भी बहुत-उचित था और सहस्रों पण्डितों की भी इस बात में लालसा रहती थी कि, कोई ऐसा ग्रन्थ हो जिसके द्वारा हम व्याख्यान शक्ति प्राप्त करसकें, इसमें पतिव्रताधर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गोरक्षा, वैश्यधर्म, वर्णव्यवस्था, मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद, धैर्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति, साकारोपासना, अवतार, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, पातिव्रतधर्म, तीर्थ, सनातनधर्म की महिमा, भक्ति, वैदिकधर्म की श्रेष्ठता, इत्यादि विषयोंपर अद्भुत व्याख्यान हैं। यद्यपि इस विषय की एक दो छोटी २ पुस्तकें छपीं परन्तु वह सर्वथा उपयोगी न हुई इसकारण बहुत से महात्माओं के पत्र इस विषय में मेरे पास आये कि, आप कोई ऐसी सप्रमाण व्याख्यान की पुस्तकें निर्माण करें जो उपदेशकी विद्या के सीखने को परमउपयोगी हो. मैंने इस बात को विचारकर और सर्वसाधारण का उपकार समझकर बडे बडे सुयोग्य महोपदेशक तथा महामन्त्री जी की वक्तृताओं को लिखकर प्रमाण के सहित संग्रह कर प्रकाशित किया है और जो कुछ इसमें लिखा है वह व्याख्यान सीखनेवालों के बडे काम का है. मुझे आशा है कि इस पुस्तक के अनुशीलन से विज्ञजन अवश्य लाभ उठाकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

सज्जनों का अनुगृहीत—

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र,

दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ के समाप्त होते ही पंडित बलदेवप्रसाद जी का सन १९०९ ई॰ श्रावण शुक्ला सप्तमीको स्वर्गवास होगया था इसी उपलक्ष में थोडी उन की जीवनी अन्त में प्रकाशित की है।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

धर्मसभाओंको सूचना.

बहुतसे महाशय उपदेशक महोपदेशकोंका पता पूछा करतेहैं हम उनके सुबीतेके लिये यहां थोडेसे नाम प्रकाश करतेहैं ।

श्रीमान् पं० दीनदयालुजीशर्मा व्याख्यानवाचस्पति मुकाम झज्जर जि० रोहतक.

श्री पं०	श्रीकृष्णजीशास्त्री	विद्यावाचस्पति	महामहो०	पटियाला.
श्री पं०	रघुवरदयालुजी	वेदान्तभूषण	"	कपूरथला.
श्री पं०	बुलाकीरामशास्त्री	विद्यासागर	"	अजमेरकालिज.
श्री पं०	गोविन्दरामशास्त्री	विद्यावागीश	महोपदे०	बरेली.
श्री पं०	दुर्गादत्तपन्तजी	कूर्माचलभूषण	महो०	काशीपुर.
श्री पं०	गणेशदत्तशास्त्री	विद्यानिधि	महो०	कन्नौज.
श्री पं०	हरनारायणशास्त्री	प्रोफेसरहिन्दूकालिज	महो०	दिल्ली.
श्री पं०	भीमसेनजी शास्त्री	सम्पादकब्रा०सर्वस्व	महो०	इटावा.
श्री पं०	दामोदरजी शास्त्री	महोपदेशक		मथुरा.
श्री पं०	नन्दकिशोरजी	वाणीभूषण	महो०	टेढा जि० उन्नाव.
श्री पं०	गोकुलचन्दजी	महोपदेशक	मुदाफरा जि० मेरठ.	
श्री पं०	विहारीलालशास्त्री	महोपदेशक	नगीना.	
श्री पं०	रलियारामशर्मा	०	अमृतसर.	
श्री पं०	कन्हैयालालशर्मा	०	शाहजहांपुर.	
श्री पं०	कन्हैयालालउपाध्याय	०	मुरादाबाद.	
श्री पं०	रामचरणशर्मा	०	पीलीभीत.	
श्री पं०	हीरालालजी मिश्र	शेखावाटी भूषण	उज्जैन.	

भजनमण्डली तथा भजनोपदेशक ।

पं• अनोखेलालजी भजनोपदेशक	तिलहर जि० शाहजहांपुर.
पं० भवानीदत्तजी भजनोपदेशक	चन्दोसी जि० मुरादाबाद.
पं० रामस्वरूप ”	बदायूं.

इसके सिवाय पीलीभीत चांदपुर धामपुर आदिमेंभी भजनमण्डलीहैं ।

सज्जनोंका आश्रित-

पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र,

दिनदारपुरा-मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

व्याख्यानरत्नमाला की विषय सूची।

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥



॥ श्रीराधामाधवाभ्यां नमः ॥

व्याख्यानरत्नमाला।

श्रीमान् पं० दीनदयालुजी महोदयका पतिव्रताधर्म-

पर व्याख्यान.

इन दिनों नवशिक्षित पुरुषोंके असदुपदेशसे और स्वयं भी कुछ २ पश्चिमी शिक्षा पाकर स्त्रियों का यह ख्याल होने लगा है कि हिंदू समाज में स्त्रियों का मान और आदर बिलकुल नहीं है, पुरुष उनको केवल एक सन्तानोत्पादक यंत्र मानते हैं, परन्तु मैं आपसे खुले शब्दों में कहदेता हूं कि ऐसा कहनेवाले और सुननेवाले दोनों हिंदुओं के शास्त्र से, उनके सिद्धांतों से सर्वथा अपरिचित हैं, यदि आप ध्यानपूर्वक देखें और विचारें तो आपको निश्चय होजायगा कि, जिन पश्चिम की स्त्रियों की दशा

देखकर आपके चित्त में यह विचार उठने लगा है, उन स्त्रियों का मान और आदर केवल आभासमात्र है और उनकी भी जड़ में स्वार्थ से बढकर, स्वार्थ से उदारतर कोई उद्देश नहीं है, हिन्दू अपनी स्त्रियों की शैशवावस्था में दुर्गा मान कर पूजा करते हैं, विवाह के पश्चात् उन्हें लक्ष्मी जानकर पूजते हैं और प्रौढावस्था में साक्षात् उमा पार्वती समझकर उनका पूजन करते हैं, हिन्दूसमाज में स्त्रियों की सरस्वती, काली, लक्ष्मी इन तीनों स्वरूप में पूजा होती है, क्या संसार में कोई ऐसी जाति या समाज है जिसमें स्त्रियों का इतना गौरव, इतना महत्व और इतना आदर हो ? फिर हिन्दुओंके आदर में विशेषता यह है कि वह स्वार्थमूलक नहीं, किन्तु परम पवित्र, परम शुद्ध और पारमार्थिक है हिन्दू पुरुष विवाह के समय साक्षात् अग्निदेव की साक्षी में और सैकड़ों मनुष्यों के सामने यह प्रण करता है कि जबतक मैं जीता रहूंगा तबतक धर्म, अर्थ, काम इन त्रिविध पुरुषार्थों में तुम्हारी इच्छा का, तुम्हारे हित का कभी उल्लंघन नहीं करूंगा. स्त्री के लिये भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञा करना पड़ती है. इससे बढकर आदर और सन्मान क्या होसकता है ? इससे पवित्र और शुद्ध प्रेम कहां पाओगे ? जो यूरप--अमेरिका के लोग स्त्रियों की स्वतन्त्रता और आदर की लम्बी चौड़ी डींगें हांका करते हैं. उनकी यह दशा हम देखते हैं कि-जहां पति पत्नी में से किसी के स्वार्थ की कुछ भी हानि हुई कि तुरन्त एक दूसरे का परित्याग करने पर उतारू होते हैं. कहां वह हिन्दू जो अपनी धर्म पत्नी के साथ उमर भर के लिये अपना अटूट सम्बन्ध मानते हैं और कहां वह पश्चिमी लोग जो जरासी बात में पति पत्नी का विछोड़ कर देते हैं ? सामान्य भगिनियो ! आपही विचार कर देखिये कि स्त्रियों का सच्चा आदर सन्मान हिन्दुओं में है या पश्चिमी लोगों में ? आजकल की नई रोशनी के मनुष्यों का प्राचीन विचारों के मनुष्यों पर यह आक्षेप है कि उनकी स्त्रियाँ अशिक्षित होने से पति पत्नी में प्रेम नहीं होता. मेरी आदरणीय भगिनियो ! इन नवशिक्षित स्त्री-पुरुषों के प्रेमकी जो बातें मैंने देखी और सुनी हैं उनसे मुझे कहना

पड़ता है कि हे नन्दनन्दन मधुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र! तुम ऐसे प्रेमसे हमारी इस हिन्दु जातिकी रक्षा करो! रक्षा करो!! मैंने एक ऐसे नवशिक्षित दम्पती के विवाह की खबर सुनी है जिसमें पतिको अपनी कई हजार रुपये की बीमापालिसी भावी पत्नी को विवाह के समय इसलिये देनी पडी थी कि यदि दैव संयोग से पति का देहान्त होजाय तौ पत्नी की चैन में, उसके सुख में किसी प्रकार की बाधा न पडने पावे, उस दिन एक पत्र में किसी महाशय का विज्ञापन मैं पढता था उसमें देखा कि आप अपनी २४। २५ वर्ष की कन्या के लिये एक बर चाहते हैं. परन्तु वह ऐसा हो कि जो कन्या के नामसे पहले कुछ रुपया बङ्क में जमा करा सके, ताकि, कन्या की उमरभर के लिये चिन्ता मिटजाय फिर वह पति जिये या मरे, उस से कुछ वास्ता नहीं; सद्भगिनियो! इस विज्ञापन को पढकर मेरा चित्त इस प्रकार खिन्न हुआ कि रोवें खडे होगये, नेत्रोंके सामने वह प्राचीन दृश्य खड़ा होगया जिसमें भगवान् दशरथनन्दन रामचन्द्र माता की आज्ञा से वन में जाने की तैयारी कररहे हैं और सार्वभौम चक्रवर्त्तिनी महारानी भगवती जानकी अपने समस्त अलंकार उतार कर सम्पूर्ण राज-वैभव त्यागकर आवश्यकता न होनेपर भी, सब के मना करने पर भी, अपने पतिदेव की सेवा करने के लिये, उनके दुःख में शरीक होने के लिये पति के साथ वन में जाने के लिये आग्रहपूर्वक उद्यत हुई हैं, हाय! भारतवर्ष! तेरी यह दशा? समय तेरी बलहारी है! कहां जानकीकी पति के लिये प्राण तक न्योछावर करने की सिद्धता और कहां इस समय के स्त्रियों की विवाह से पूर्वही पति के मृत्यु के पश्चात् अपने सुख की चिन्ता! क्या यही प्रेम है? क्या इसी का नाम आदर और सन्मान है! मैं आपसे क्या कहूँ और कैसे कहूँ? हिन्दू शास्त्र में पत्नी के लिये पति ही शिव, पतिही विष्णु, पतिही तीर्थ, वही क्षेत्र, वही मन्दिर, वही जप, वही, तप, सब कुछ पतिही है. पति की आज्ञा के बिना कोई धर्मानुष्ठान स्त्री के लिये विहित नहीं है. पति के सहित स्त्री को यज्ञ–योग तप धर्मानुष्ठान करने का अधिकार है परन्तु स्वतन्त्रता से पति सेवाही उसके

लिये मोक्षदायी है. पतिव्रता माहात्म्य से सैकडों ग्रन्थ भरे पड़े हैं, उन सबको सुनाने लगूँ तो महीनों की कौन कहे वरसों लग जायँगे. इस लिये मैं आपको एकही ऐसा दृष्टान्त सुनाता हूँ कि जिससे पतिव्रता की लोकोत्तर महिमा आपकी समझ में आजावेगी और आप मैं सब कृतार्थ होजायँगे. कुरुकुलावतंस महाराज धृतराष्ट्र जो जन्मांध थे उनकी प्रातः स्मरणीय पूज्य चरण महारानी गांधारी ने, इस निश्चयसे अपने आंखोंपर पट्टी बांध रक्खी थी कि जब पति संसार को देख नहीं सकता तब हम अपने अभागी नेत्रोंसे क्या देखें ! इस पति भक्ति के प्रभाव से गांधारी के नेत्रों में वह तेज वह शक्ति, आगई थी कि, जिसकी तरफ वह आंख उठाकर देखती वही अमर होजाता. उसने दुर्योधन की रक्षा के लिये उसे सर्वाङ्ग नग्न होकर अपने सामने आने के लिये कहा और उस दिन अपने आंखों की पट्टी निकालकर वह उसके सर्वाङ्ग को देखने वाली थी. यदि यह बात होजाती तो सृष्टि में दुर्योधन को कभी कोई नहीं मार सकता. परन्तु भावी प्रबल होती है भगवान् श्रीकृष्ण को यह खबर मालूम होतेही दुर्योधन नङ्गा होकर माता के पास जाता था उसे आप रास्ते में मिल गये और कहा कि तुम कैसे निर्लज्ज हो ! माता के पास ऐसे नंगे होकर जाते तुम्हें कुछ शरम नहीं आती ! दुर्योधन ने कहा कि माता ने मुझे इसी प्रकार से बुलाया है, परन्तु भगवान् ने कहा कि चाहे तुम और सर्वांग खुला रक्खो परन्तु गुह्यांग, मैं एक फूलों की झोली देता हूँ उससे ढांकलो. दुर्योधन के चित्त को व्यामोह हुआ. वह फूलों की झोली पहनकर गांधारी के पास पहुंचा और कहा माताजी, यह दास हाजिर है. उसने पट्टी खोलकर देखा तो सर्वांग खुला है परन्तु गुह्यांग ढँका हुआ है, देखतेही गांधारी बडी खिन्न हुई और उसने दुर्योधन से कहा कि हे अभागे पुत्र! तू भगवान् श्रीकृष्ण की माया में फँसगया. तेरा और सब अंग अमर होगा. परन्तु जितना अंग ढँका होनेके कारण मैं नहीं देख सकी वहीं पर आघात लगने से तेरी मृत्यु हो जायगी आगे इसी प्रकार हुआ है यह बात भारत जाननेवालों से छिपी नहीं है

परन्तु भगवान ने दुर्योधन को जो इस प्रकार धोखा दिया उसके बदले में गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दे डाला कि तेरे वृष्णिवंश का सर्वनाश होगा इस पतिव्रता के शाप को साक्षात् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्र भी नहीं टाल सके समस्त वृष्णिकुल नष्ट हो गया, पतिव्रता की क्या महिमा है ! जिस पातिव्रत से साक्षात् ईश्वर को भी शाप देने की शक्ति पतिव्रता स्त्री में आजाती है उसको शिव विष्णु की पूजा से क्या प्रयोजन है ? उसके लिये पति पूजाही शिव विष्णु पूजा से बढकर है. धन्य पतिव्रता ! धन्य गान्धारी ! तुम्हारे नाम से ही पापी कृतार्थ हो जायँगे, इन दिनों औरों की देखादेखी हिन्दू स्त्रियों में भी गाड़ी में सवार हो हवा खोरी के लिये जाना, बायसिकल पर चढना, नाटक देखना, तथा उपन्यास पढ़ना इत्यादि बातों का चाव बढ़ता जाता है, इस विषयमें मैं इतनाही कहना चाहताहूं कि ये बातें विलायत में भलेही सुखदायक या हितकर हों; परन्तु हिन्दुस्थान की जलवायु इन बातों के अनुकूल नहीं है. यहां पर जो रीति, जो मर्यादा हमारे पुरुषा डाल गये हैं उसी का अनुसरण करना श्रेयस्कर है, स्त्रीके लिये बाल्य में पिता के, युवावस्था में पति के और वैधव्य में पुत्र के अधीन रहने का जो नियम धर्मशास्त्र ने कहा है वही हमारे हिन्दू समाज का कल्याण करनेवाला, हमारी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला और हमारे समाज के पावित्र्य की रक्षा करनेवाला है, जिन देशों में,जिन समाजों में इस नियम का पालन नहीं होता उन देशों और समाजों की स्त्रियों की दशा और गृहपरिस्थिति कैसी होती है उसे मैं इस सभा में वर्णन नहीं करना चाहता, उपसंहार में मैं एक बात कहूंगा, आजकल की स्त्रियों को रसोई बनाने में बड़ाभारी कष्ट मालूम होता है जिनको द्रव्य की कुछ अनुकूलता हुई कि झट उन्होंने रसोय्या रखलिया और स्वयं सायकल पर चढ़ना, उपन्यास पढना तथा इसी ढङ्ग के और २ अनुपयोगी व्यवसाय में अपना समय व्यतीत करने लग गईं, मेरी श्रद्धेय भगिनियो ! यह बात सनातनधर्म मर्यादा के विरुद्ध है,आपसे अधिक क्या कहूँ साक्षात द्रौपदी और जानकी जो सार्वभौम राजाओं की रानियें थीं, वेभी अपने

पति और ब्राह्मणोंकेलिये. अपने हाथसे भोजन बनाती थीं उनके आगे आप क्या चीज हैं? आपका ऐश्वर्य, आपकी दौलत, आपकी नजाकत उनके सामने क्या योग्यता रखती है. जब वे स्वयं पाक बनाती थीं तब क्या आप अपने पति के लिये रसोई नहीं बना सकतीं? मेरा विनयपूर्वक आपसे इतनाही कहना है कि आप अधिक नहीं तो अपने पति और ब्राह्मणोंके लिये स्वयं पाक बनाया कीजिये औरों के लिये चाहे भलेही रसोइये पाक बनावें आप कैसाही पाचक रखिये उसके भोजन से पति को वह तृप्ति, वह सन्तोष नहीं होसकता है जो पत्नी के बनाये भोजन से होगा, अन्तमें मैंने जो कुछ संक्षेप से अपने विचार आपके सामने कहे हैं उनका अच्छीतरह स्मरण रखकर यदि उनके अनुसार आप वर्त्ताव करेंगी तो आपका इस लोक में तथा परलोक में कल्याण होगा और हिन्दू समाज की प्राचीन कीर्ति संसार में संस्थित रहेगी॥

बम्बई १२। ८। १९०४

व्या. वा. पं० दीनदयालुजी महोदयका

आध्यात्मिक उन्नति-

पर व्याख्यान.

तारीख १९ अगस्त सन् १९०४ ई० शुक्रवार को पंडितजी का फ्रामजी कावसजी इन्स्टिट्यूट में 'सर' भालचन्द्रकृष्ण भाटवडेकर 'नाइट' के सभापतित्व में 'आध्यात्मिक उन्नति' पर एक अपूर्व प्रभावशाली और मनोहर व्याख्यान हुआ, जिसका सारांश हम नीचे देते हैं. पण्डितजी ने कहा कि आज हमारे महामान्य सभापतिजी की आज्ञानुसार मैं इस महती सभा में 'आध्यात्मिक उन्नति' पर बोलने के लिये उद्यत हुआ हूँ, परन्तु प्यारे सज्जनो! मैं एक बात पहिले आपसे कह छोड़ता हूँ कि, आध्यात्मिक विषय निरूपण करने का प्राचीन नियम यह नहीं है, आत्मतत्त्व सुनने का पुराना तरीका कुछ और ही था प्राचीन समय में जब देवताओं के

राजा इन्द्र और असुराधिप विरोचन इन दोनों को अध्यात्म विद्या जानने की इच्छा हुई तब वे दोनों 'समित्पाणि' होकर हाथ में लकड़ियों का गट्ठर लिये हुए, ब्रह्मा के पास गये और उनसे अध्यात्मविद्या का उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की और ब्रह्मा के सन्निधान में कई वर्षोंतक रहकर ब्रह्मविद्या का विधिवत् अध्ययन किया, प्यारे मित्रो! उसी के मुकाबिले में मुझे आज घंटे डेढ घंटे के भीतर अध्यात्म विद्या और साथही उसकी उन्नति के उपाय आपको सुनाने हैं, तिसमें भी आज के विषय के दो विभाग ह,. एक आध्यात्मिक विद्या और दूसरी उसकी उन्नति। यदि केवल अध्यात्म तत्त्व ही कहैं तो व्याख्यान का स्वरूप कुछ और हो जायगा और केवल उन्नति के विषय में बोलें तौभी व्याख्यान का ढङ्ग और प्रकारका होगा इसलिये मैं चाहता हूँ कि दोनों पर थोड़ा थोड़ा बोलूँ, सज्जनो! विषय वडा गहन और बारीक है, समस्त उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता योगवासिष्ठ इत्यादि सैकड़ों वड़े वड़े ग्रन्थ इसी विद्याका उपदेश कररहे हैं इसका समझना और समझाना दोनों कठिन हैं, उसके लिये मन एकाग्र होना चाहिये परन्तु मनकी एकाग्रता सहज बात नहीं है, अर्जुनने गीता में भगवान श्रीकृष्णसे कहा है " चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। निग्रहं तस्य मन्येहं वायोरिव सुदुष्करम्" हे कृष्ण! हे मधुसूदन! मन बड़ाही चञ्चल और बलीहै उसका वश करना वायु को वश में लाने के बराबर दुशवार है. प्यारे दोस्तो! अर्जुन जैसा वीर, अर्जुन जैसा धनुर्धर और अर्जुन जैसा ज्ञानी भी मनको इतना चञ्चल बताता है और उसके लिये भी मन का वश कर लेना इतना कठिन है. परन्तु आजकल के दोही चार अंग्रेजी किताबें पढे हुए बाबू साहब झट कह उठते हैं कि गंगा, तीर्थ सन्ध्या-पूजा यह सब क्या वाहियात है। अजी "मन चङ्गा तो कठोती में गङ्गा,, भारतवर्ष? तेरे भविष्य में क्या लिखा हुआ है? अस्तु, समय बलवान् है, अब मैं आपको थोड़ेही समय में और आप सबकी समझ में आजाय इस प्रकार एक दृष्टान्त को लेकर संक्षेप से आत्म तत्त्व निरूपण करता हूं।

प्रथम इस सिद्धान्त को समझ रखना चाहिये कि संसार में कोई कार्य विना प्रकाश के नहीं होसकता, मैं यहां बोल रहा हूँ, आप सुन रहे हैं, अभी यदि यहां का चिराग बुझा दिया जाय तो मेरा व्याख्यान बन्द होगा और आपका सुनना. तब यह प्रश्न उठता है कि वह कौनसा प्रकाश है, वह कौन नूर है जिसके सहारे इस सारे चराचर जगत् का व्यवहार चलता है ? इसका उत्तर सबसे पहले यही मिलेगा कि सूर्य के प्रकाश से संसार का व्यवहार चलरहा है. परन्तु सायङ्काल को जब सूर्य का अस्त होता है तब किसके प्रकाश से व्यवहार चलता है ? उत्तर मिलेगा—चन्द्र के प्रकाश से. मकान के भीतर चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता, अँधियारी रात्री को चन्द्रका प्रकाश नहीं होता वहां कौनसा प्रकाश है ? आपको कहना पड़ेगा, अग्नि, दीपक, ज्योति के प्रकाश से वहां का काम लिया जाता है, परन्तु अमावास्या की अँधियारी रात्रि में कोई मनुष्य जङ्गल में से कहीं को जाता हो और बीच में मार्ग भूल जाय और पास न अग्नि हो, न दीपक हो न दियासलाई हो. प्रकाश का कोई समान पास न हो ऐसे मौके पर आपको कौन रस्ता दिखा सकता है ? आपने कहींसे मनुष्य की आवाज सुनी और झट उस तरफ को चलने लगे. यहांपर आपका काम शब्द के प्रकाश से होगया अर्थात् शब्द में भी प्रकाश है, शरीर पर कहीं खटमल या मच्छरने काटा और अन्धेरे में भी आपका स्पर्श के प्रकाश से ठीक काटने की जगहपर हाथ पहुँचा और उसको आपने निकाल कर फेंक दिया, कहीं से सुगन्धि आई और आप अन्धेरे में उस दिशा को जानकर उस तरफ जाने लगे, इसप्रकार शब्द—स्पर्श—रूप—रस—गन्ध इन पांचों मात्राओं में प्रकाश है. और यह मात्राप्रकाश सूर्य चन्द्रादि के प्रकाशसे भी सूक्ष्मतर और श्रेष्ठ है, इसका विवरण करने लगूँ तो बहुत तूल हो जायगा, जहाँ शब्द स्पर्श वगैरह का भी प्रकाश नहीं होता, वहां कैसे काम चलता है ? सोता हुआ मनुष्य स्वप्न में अनेक प्रकारकी अद्भुत बातें देखता है, वहांपर न सूर्य का प्रकाश होता है, न चन्द्रमा का, न दीपक का, न शब्दका, न स्पर्श का, फिर वहां किसके प्रकाश में मनुष्य स्वप्न देखता

है ? कहना पड़ेगा कि वहां मानसिक प्रकाश है और जब सुषुप्ति में मन की क्रिया भी लीन हो जाती है उस दशा का स्मरण मनुष्य को कैसे रहता है ? सबेरे उठकर हम कहते हैं कि अहा ! हा !! कैसी ठण्डी हवा चलती थी, कैसे मजे से सोये और कैसा सुख हुआ ? इस सुख का साक्षी कौन है ? किसने देखा, किसके प्रकाश में देखा ? सबका उत्तर एकही है, आत्मा साक्षी है, वही द्रष्टा है और वह अपनेही प्रकाश में देखता है, दूसरे शब्दों में वह स्वयं प्रकाश है, उसको किसी दूसरे के प्रकाश की अपेक्षा नहीं है, उसी के प्रकाश से संसार प्रकाशित होरहा है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गीता में कहते हैं कि " न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यत्प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम,, न वहां सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमाका, न अग्निका वहां प्रकाशहै और वही मेरा स्थानहै।

इसी बात को मैं एक बडे सरल दृष्टान्त के रूप में आपके सामने रखताहूँ प्यारे सज्जनो ! यह दृष्टान्त मेरा बनाया हुआ नहीं है, वेदभाष्यकार श्रीविद्यारण्य मुनि ने अपनी बनाई पञ्चदशी में इसको लिखा है, परन्तु वह ज्यों का त्यों न देकर उसके भाव को जमाने की रुचि के अनुसार नये वेष में सजाकर आपके सामने रखता हूँ, क्योंकि दृष्टान्त देखने में तो बडा सरल है परन्तु इसका रहस्य समझने में बडे २ विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य भी चक्कर खाजाते हैं।

आप मेरे साथ कल्पना करलो कि एक राजा के महल में रात्रि के समय दरबार भरा हुआ है, दीवान, सरदार, सेक्रेटरी और बडे २ अहल-कार बैठे हुए हैं, बडे शान का दीपक जलरहा है और एक नटी या नाचने वाली वेश्या नृत्य गायन कररही है, उसके साजिन्दे सारङ्गी, तबला, सितार; आदि वाद्य बजाने में कमाल कररहे हैं, नटनी के सुर के साथ सारङ्गी सितार के सुर इसप्रकार से मिलकर चलते हैं कि मानों तीनों एक रूप होगये हैं, तबला बजानेवाला भी ऐसी सफाई से बजा रहा है कि जहां सम आई कि झट उसने ताल देदिया, इधर तबले की सम मिली, उधर सारंगी सितारके सुर मिलगये, बस, राजा, दीवान सब आनन्द में मग्न

होकर बोल उठे वाहवा ! वाहवा !! सुबहान अल्लह ! वसल्ले इला !! गाने का आनन्द मिला, सुख होगया, अब, थोडी देर के लिये मानलो कि नटी पंचम में गारही है, सारङ्गी ऋषभ में बजरही है और सितार गान्धार में बजती है, ताल का मेल नहीं है, परिणाम क्या हुआ, राजा की तबीयत बिगड़ी और उसने कहदिया कि क्या वाहियात गाना है है ! हमारी तबीयत बिगड़ती है, इसे यहांसे दूर करो, बस राजा को दुःख होगया, साज का मिलनाही सुख है और उसका न मिलनाही दुःख है, यह तो ठीक है, परन्तु यह सुख दुःख कबतक है ! जब तक दीपक जलरहा है तबही तक, ज्योंही दीपक गुल हुआ और प्रकाश जातारहा त्योंही न नटनीका गाना रहेगा न सारङ्गी सितार का बजना रहेगा और न इससे होनेवाला सुख दुःख रहेगा, तात्पर्य क्या निकला कि,राजा के सुख दुःख का कारण, उसका साक्षी दीपक है, परन्तु वह स्वयं बिलकुल असंग है न उसको राजा के सुखसे प्रयोजन है न दुःखसे गरज एक राजाके स्थान में दूसरा राजा आजाय तौ भी दीपक को कुछ परवाह नहीं है·इसी दृष्टान्त को और थोड़ा आगे बढादें· नटनी का गाना हो चुका, वह चली गई फिर राज काज के विषय में चर्चा चलपड़ी राजा ने दीवान से तथा और २ मंत्रियोंसे पूछा कि अमुक पड़ौसी राजा इस विषय में इस शर्तपर संधि करना चाहताहै इस विषय में आपकी क्या राय है ? या रूस जापान के युद्ध में किसको मदद देना चाहिये ? इसपर दीवान वगैरह ने जो राय दी वह राजा की राय के साथ नहीं मिली उसको दुःख हुवा· और जहां उन्हों ने कह दिया कि जी सरकार हुजूर की राय बहुत नेक और बहुत बजा है. झट राजा को सुख हो गया. यहां यह हुआ कि ऐकमत्य या इत्तिफाक· राय होना सुख और मतभेद या खिलाफ राय होना दुःख है अब राजा का दरबार हो चुका उसने अपनी रानी को बुलाभेजा और उसकी राय पूंछी वह जैसी कुछ राजा के अनुकूल प्रतिकूल मिली वैसा उसको सुख दुःख हुआ फिर उसने अपनी रानी को भी कहदिया कि अब तुम जाव. मैं एकान्त में· विचार करूंगा, उसने अपनी सदसद्विवेक बुद्धि के अनुसार

विचार करके अपनी राय कायम कर ली, उसे सुख हुआ, इससे यह सार निकला कि अनेकत्वमें सुख दुःख है अकेले को कुछ नहीं अब राजा भी वहां से उठकर चलागया. तौ भी दीपक वैसाही जलरहा है. उसके सामने दरबार हुआ, नाच गाना हुवा, रानी आकर चली गई, स्वयं राजा भी आकर चले गये, उनको सुख दुःख भी हुआ, वह सारा यह दीपक देखता रहा, जो कुछ हुआ इसी के कारण से हुआ. परन्तु वह अन्ततक स्वयं असङ्ग रहा, अब राजा चले गये तौ भी वह पहले की तरह जलरहा है, राजा, रानी, दरबार, नाच सब के लिये उसकी जरूरत थी, परन्तु स्वयं उसको किसी की जरूरत नहीं है, वह स्वयं प्रकाश है, सज्जनो! यह शरीर महल है, इसमें अहंकाररूपी राजा बैठा हुवा है, संसारी बुद्धि नाचनेवाली वेश्या है, पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेंद्रिय इसके साजिंदे हैं, यदि बुद्धिरूपी नटनी का और इन इन्द्रिय साजिन्दों का मेल मिलगया तौ सुख हुआ और बे मेल होगया तो दुःख,शास्त्र विधि के अनुकूल इन्द्रियोंका साज बजा और बुद्धि वेश्या ने नृत्य किया तौ सुख होगा और विवेक प्रतिकूल साजिन्दे और वेश्या अपनी २ इच्छा के अनुकूल चलने लगे तो दुःख होगा, अपनी धर्मपत्नी में सन्तानोत्पादन करने से नटनी साजिन्दों का मेल मिलकर सुख होता है और पर स्त्री की इच्छा रखने में बे मेल काम होता है उससे दुःख होताहै. यह राजा, यह वेश्यायें साजिन्दे इन सब का प्रकाशक आत्मा है परन्तु वह दीपक की तरह तीनों काल में असंग है. उसे किसी के सुख–दुःख से गरज नहीं है दीपक और आत्मा म भेद उतनाही है कि लौकिक दीपक चैतन्य रहित है और आत्मा सच्चिदानन्द है, इस प्रकाशक आत्मा के प्रकाश से मनुष्य जो कुछ भले बुरे कर्म करता है उनका गुप्तचित्र उसके अन्तःकरण में खिंचा रहता है, और जबतक उसका फल न भोग लिया जाय तबतक वह बीजरूप से वहां पर रहता है. हमारे हृदय में बैठकर हमारे कर्मों का हिसाब रखनेवाला चित्रगुप्त यही है, स्वप्न में भी जाग्रत् अवस्था में जिन बातों का संस्कार चित्तपर पड़ा

रहता है वेही बातें दीखती हैं. अर्थात् स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष सृष्टि के अनुकूलही होती है, प्यारे दोस्तो! क्या कभी किसी क्षत्रिय ने ऐसा सुपना देखा है कि वह किसी के यहां श्राद्ध का न्योता खाने गया हो, या कोई दान लेता हो? एक भी ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलेगा, वह सुपना ब्राह्मणही देख-सकता है. क्योंकि प्रत्यक्ष सृष्टि में उसी का यह कर्म है व्यभिचारी मनुष्यको स्वप्ने में पर स्त्री ही दीखती है और धर्मनिष्ठ मनुष्य को ईश्वर का ही दर्शन होता है. मन रहित प्राणकी जो दशा उसी का नाम सुषुप्ति है, सुषुप्ति में आत्मा मन को हुकुम देता है कि तुम सोजाव.

॥ श्रीकृष्णजी की सोलह कला ॥

जागृत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं के सोलह भेद होते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह कला कही जाती हैं वे अध्यात्मिक भाव से येही हैं, वे१६भेद इस प्रकार होते हैं, जागृत में जागृत,जागृ में स्वप्न,जागृत् में सुषुप्ति और जागृत् में तुरीय,स्वप्नमें जागृत्,स्वप्न में स्वप्न स्वप्न में सुषुप्ति और स्वप्न में तुरीय, इसीप्रकार सुषुप्ति और तुरीय के विषय में समझना, इसी षोडश कला पूर्ण सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति करना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है और ईश्वर की श्रवण कीर्त्तनादि ९ प्रकार से भक्ति करने से वह सिद्ध होता है, यहांतक संक्षेप से अध्यातम तत्त्व का निरूपण करके अब उसकी उन्नतिके विषयमें थोड़ा कहकर मैं आजका व्याख्यान पूरा करूँगा।

॥ उन्नति ॥

प्यारे मित्रो! इस भारतवर्षमें किसी समय गार्गी मैत्रेयी जैसी कितनीही अलौकिक महर्षियों की स्त्रियाँ भी अध्यातम विद्या में खूब निपुण थीं परन्तु हाय! भारतवर्ष इस समय इस विद्या की इतनी अवनति होगई है कि उसकी फिर से उन्नति करने के लिये बिलायत, अमेरिका, रूस वगैरह देशों के कर्नल तथा स्त्रियां भारतवर्ष में आकर प्रयत्न कररही हैं. यूरप

अमेरिकावाले वास्तव में बडे दयालु हैं और उसमें भी भारतवासियों पर उनकी असाधारण कृपा है वे हमारे लिये अबतक कपडे जूते, बटन यन्त्र आदि सब चीजें वहां से बना कर भेजते थे. हमारे देवताओं की मूर्त्तियां भी विलायत से ढलकर आती थीं परन्तु अब तो वेदांत की आध्यात्मिक विद्या भी यूरप से ढलकर आने लगी है ब्राह्मणों के गुरुत्व की वेदान्त की दूकान भारतवर्ष से उठकर अब विलायत में जा खुली है, प्यारे दोस्तो! अब चलो! तुम और हम वहीं चलकर जनेऊ पहन लेंगे, उस दिन किसी कालेज का 'प्रास्पेक्टस' में पढ़ता था उसमें लिखा देखा कि इस कालेज का एक उद्देश यहां पढनेवालों को ऋषि बनाने का भी है मेरे प्यारे भाइयो! ऋषि कालेज में या और कहीं बनाये से नहीं बनते हैं हीरा हीरे की खान में से ही निकल सकता है, पत्थर को या कांच को कितनाही रगड़ो, कितनाही पालिश करो, उसका कभी हीरा नहीं बनसकता. केवल विद्या पढने से ऋषि नहीं बन सकते, जब बैरिस्टरी और सिविल सर्विस जैसी मामूली अधिकार की बातें भी हमारी गवर्नमेंट ने अपने अधीन रक्खी हैं तब ब्रह्मा क्या ऋषि बनाने का अधिकार चाहे जिस आदमी को देसकती है? ऋषि ब्रह्मा के साक्षात् मानस पुत्र थे और समय आपड़ने पर इस समय जो उनकी सन्तान है उन्हीं में आर्ष तेज का उत्कर्ष होगा. मैं सुनता हूँ कि हिमालय में रहने वाले कितनेही महात्मा विलायत की, औरतों को मिलते हैं, उनको चिट्ठी पत्री लिखा करते हैं और उनके खाने के लिये चीजें ले आते हैं, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ और मैं इस बातको सोचने लगा कि क्या भारतवर्ष का इतना अधःपतन होचुका है कि हमारे ऋषियों को अपनी सन्तान को छोड़कर विलायती औरतों और अमेरिकन कर्नलों की शरण में जाना पड़ा है!! ब्राह्मणो! यह तुम्हारा अधिकार है अध्यात्म विद्या तुम्हारे घर की चीज है. तुम जागो! अपने घरको सम्हालो तुम्हारे घर में आकर और और लोग गुरु

बनने लगे हैं, यह कुछ तो तुम्हारे आलस्य का और कुछ लोगों की बुद्धि विपर्यास का फल है अतः मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप सचेत होकर अपना कर्त्तव्य करने लगो. विलायती लोगोंने थियासफिकल सोसायटी बनाकर अध्यात्म विद्याकी उन्नति का जो उद्योग अपनी तरफसे चलाया है उसे उन्हें करने दो, उससे यदि उन्हें कुछ लाभ होता हो तो कर लेने दो, देव और दानव दोनों नें समुद्र मथन किया था, जो जिस चीज का अधिकारी था उसे वह मिलगई इसी प्रकार इस विषय में भी होगा. परन्तु आपके गुरु सिवाय ब्राह्मणों के और कोई नहीं बन सकते उपनिषदों में कथा है कि एक ब्राह्मण किसी राजाके पास गया राजाने ब्राह्मण से ब्रह्म का स्वरूप पूँछा वह नहीं बतासका और उसने राजा से कहा कि आप मुझे उपदेश करो ! राजा ने कहा कि मैं कभी तुम्हारा गुरु बनकर तुम्हें उपदेश नहीं कर सकता. मैंने यह विद्या ब्राह्मणों से ही पढी है अतः आपको यह दानरूप से सङ्कल्प करके देता हूँ, उपदेश रूप से देने का मुझे अधिकार नहीं है, ऐसी और भी बहुतसी कथा तथा प्रमाण मिलते हैं मुसलमानों की अमलदारी में दाराशिकोह प्रभृति मुसलामान विद्वानोंने हमारे उपनिषदों का फारसी भाषामें अनुवाद करवाया, उसे पढकर मुसलमान वेदान्तियों का एक नया पन्थ 'सूफी' नाम से संसार में प्रचलित हुआ, उसी प्रकार अब अंग्रेजी अनुवाद पढ़कर ' थियासूफी, पन्थ चल पड़ा है, यह तो हमारे धर्म की खूबी है कि जो कोई उसका नाश करने के लिये आता है वही उसका अनुयायी बनता है, अन्त में आप सब सज्जनोंसे अपनी अध्यात्मिक विद्या की प्राचीन विधि उन्नति करने के बिनय करके मैं अपना कथन समाप्त करता हूँ।

बम्बई १८।८।१९०४.

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डिताग्रगण्य श्रीमान् पण्डित दीनदयालुजी का-

गोरक्षा-

पर व्याख्यान।

इस कलिकाल की बलिहारी है कि भारतवर्ष जैसी पवित्र भूमि में, सनातनधर्मावलंबियों की इस मण्डली में, वैदिक आर्य लोगों की इस महती सभा में, गोरक्षा पर बोलने की मुझे जरूरत पड़ी है कर्म-उपासना ज्ञान जैसे अलौकिक विषय में उपदेश की आवश्यकता आचार्योंने बतलाई है शुभकर्मों से मल दूर होगा, मन पवित्र होगा, उपासना से विक्षेपनिवृत्ति होगी, और ज्ञान से आवरण हटजायगा ये बातें तो समझाने की हैं, परन्तु जो हमारी रक्षा करती है उसकी रक्षा हमको भी करना चाहिये, जो प्रत्यक्ष धर्म है, उसके लिये भी उपदेश की आवश्यकता होना इसी का नाम घोर कालिकाल है, तथापि भगवदनुग्रह से ईश्वर की कृपासे, जो ब्रिटिशशासन हमें मिला है उसी की कृपा का यह फल है कि आज हम यहां एकत्र होकर इस विषय पर बोल सकते हैं, यह कम सौभाग्य की बात नहीं है बीच में एक हजार वर्ष तक बोलना भी कठिन था. परन्तु बृटिश सूर्य के सामने वह अन्धकार जाता रहा अब शांति का समय आया है. इसमें जो धर्मोन्नति-आत्मोन्नति करना हो सो करलो, हिंदू शास्त्र के अनुसार इस बात को हम सिद्ध कर सकते हैं कि जिस मनुष्य से कोई भी धर्म नहीं हो सका उससे यदि एक भी गौ की किसी प्रकार से रक्षा हो जाय तो उसका उद्धार हो जायगा, राजा का राज्य और प्रजा का सुख इनकी स्थिति गोरक्षाहीपर निर्भर है, संसार के इञ्जिन में यह एक ऐसी चीज है जिसकी हानि से सब चरखा ढीला हो जाता है, जिस प्रकार जगद्व्यापी ब्रह्म संसार का उपकार करता है उसी प्रकार गौ--जीव समस्त जगत् का उपकार करता है, गौ में सम्पूर्ण सृष्टी का सर्वस्व भरा हुआ है,

यद्यपि ये सब बातें मैं अच्छी तरह आपको प्रत्यक्ष करके दिखा सकता हूँ तथापि इस विषय को न तो मैं पोलिटिकल बनाऊंगा न गहन धर्म सम्बन्ध में ले जाऊंगा किन्तु दोनों को बीच में रखकर इसपर बोलूंगा।

सर्व देशों में, सर्व धर्मोंमें, यह एक सर्व सम्मत बात हो गई है कि मनुष्य 'अशरफ—उल—मखलूकात अर्थात् जगत् के अन्दर समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ है, और मनुष्य इस बातका बड़ा भारी अहंकार करते हैं परन्तु मनुष्यका यह श्रेष्ठत्व, सर्वोत्तमत्व क्या इसी बात में है कि वह औरों को मारकर अपना पेट भरे? औरों को दुःख देकर आप आराम करे? यह तो सिंहादिक पशु भी करते हैं. वास्तव में रेल, सड़क, स्टीमर, तार आदि सुखसाधनही मनुष्य की उन्नति का लक्षण नहीं है, किन्तु चिंउटी से लेकर ब्रह्म तक समस्त प्राणियों को जो सम दृष्टि से देखता है, जीव ही में नहीं, वरन वृक्ष—पत्तों में भी जो आत्मभावना करता है, जो सबपर दया करता है वही अव्वल दरजे का मनुष्य है, उसी में सच्चा मनुष्यत्व है, आजकल भी रिफौर्मर या सुधारक उसी को कहते हैं, जो केवल अपनाही पेट नहीं पालता किन्तु अपना घर, अपनी जाति का भी उपकार करता है, जो इससे भी आगे बढकर देशभर का उपकार करता है सो सबसे बड़ा सुधारक कहलाता है, सज्जनो! इस ख्याल से मैं आपको दिखाऊंगा कि सबसे बड़ी सुधारक गौ है, क्योंकि वह जगत् भर का उपकार करती है और वह इस प्रकार से करती है कि कोई भी सुधारक मनुष्य वैसा नहीं कर सकता, इसपर कुछ महात्मा कहेंगे कि मनुने तो खुले शब्दों में कह दिया है कि 'न मांस भक्षणे दोषः....प्रवृत्तिरेषां भूतानां' फिर मांस भक्षण से मनुष्यत्व की हानि किस प्रकार होती है? इसका अर्थ यह है कि मांसादि खाना यह भूतों की—अर्थात् प्राण की प्रवृत्ति है. प्राण रूपी अग्नि कुछ खाने को मांगता है, उसे स्वाद की अपेक्षा नहीं है उसका क्षुधा निवृत्ति मात्र से ही प्रयोजन है, लड्डू... कचोरी—दूध—हलवे से भी निवृत्त होती है; मांस सेभी और सूखे चनेसेभी होती है परन्तु मांस ही चाहिये, या लड्डूही चाहिये यह स्वाद

की बात मनके आधीनहै मन प्राणके आधीन है; वह वृत्तियां उठाता है, प्राण सबमें है हाथी में भी है और सिंह में भी है. सर्प में भी है. और मनुष्य मेंभी है, सिंह मांस खाता है और हाथी घास खाता है, घास-मांस पार्टी सनातन है, कुत्ता-सिंह वगैरह मांसपार्टी वाले हैं और गौ-भैंस वगैरह घास पार्टीवाले हैं मनुष्य एक आश्चर्यपार्टी है वह दोनों में है और दोनों से अलगभी है, मुझमें एक जगह इन पार्टीवालों ने पूँछा कि पण्डित जी आप किस पार्टी में हैं ? मैंने कहा भाई ! न मैं घास पार्टी हूँ, न मांसपार्टी हूँ, मैं तो खीरपार्टी में हूँ, प्राण सब कुछ खाता है, श्रुती में इसका 'अत्ता चराचरस्य' कहा है उसका यही तात्पर्य है इंजिनमें कोयला डालने सेभी रेल गाडी चलेगी,लकडी से भी चलेगी,या और कुछ ईंधन डाले तोभी चलेगी इंजिन यह कभी नहीं कहेगा कि मुझे अमुक प्रकार का ही ईंधन चाहिये, परन्तु इनमें से किस चीज से कौनसा लाभ है और कौनसी हानि है इस बात को विचारकर रेल्वेवाले लाभदायक चीज काम में लाते हैं इसी प्रकार प्राणाग्नि कुछ अन्नरूपी ईंधन चाहता है, उसे किसी विशेष वस्तु से प्रीति भी नहीं है और किसी से घृणा भी नहीं है, इसलिये उसको दोष भी नहीं है, यदि किसी वैष्णव को कि जिसने अपनी उमर भर में कभी मांस देखा तक नहीं है; मांस की गन्ध भी आ जाय तो उसे उलटी हो जायगी, केवल इतनाही नहीं, किन्तु उसने कोई चीज खाई हो और उस में मांस है, ऐसा झूँठही कह दो तो भी उसे वमन हो जायगा, परन्तु यदि किसी दूसरी चीज में मिलाकर कुछ दिनतक उसे मांस खिलाया जाय तो उसके पश्चात् उसकी मनोवृत्ति मांस खाने की तरफ हो जायगी सारांश 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस भगवद्वचनानुसार मनुष्य की भलाई, बुराई, उन्नति,अधःपात आदि का जो कारण मन है उसकी जिससे भलाई होगी,जिससे वह पवित्र होगा, वही आहार समझकर उसको देना चाहिये क्योंकि पाप पुण्य सब मन में है, प्राण वायुतत्त्व है, और वह अग्नि, पृथ्वी और जल इन तीनों को खाजाता है जो अन्न हम खाते हैं उसकी तीन दशा

होती हैं; और २७ नक्षत्र में वीर्य बनता है जो कुछ हम खाते हैं उसमें तीन-तत्त्व होते हैं, मिट्टी (पृथ्वी) जल और अग्नि, प्राण [वायुतत्त्व] खाता है. जल स्वाद देता है और अग्नि पकाता है, खाये हुए अन्न के पार्थिवांश की दूसरे दिन विष्टा होती है सूक्ष्म अंश का मांस बनता है और कारण अंश का मन बनता है इसी लिये कहावत प्रसिद्ध है कि "जैसा खावो अन्न वैसा होगा मन्न" पेय पदार्थों में जो जल का स्थूलांश होता है उसका मूत्र बनता है, सूक्ष्मांश का रक्त बनता है, और कारण अंशका प्राण बनता है, आग्नेय अन्न (चिकनाई घी वगैरह) के स्थूलांश की हड्डी बनती है, सूक्ष्मांश की मज्जा बनती है और कारण अंशकी वाणी बनती है सारांश हमारा सम्पूर्ण देह और मन, प्राण और वाणी ये सब अन्नपान से बनते हैं अतः ऐसा अन्नपान सेवन करना चाहिये जिससे पुष्टि आजाय, परन्तु काम क्रोध अहङ्कारादि विकार उत्पन्न न हों; तथा धैर्य और शान्ति उत्पन्न हो जाय, ऐसा आहार संसार भरमें सिवाय गौके दूध के और कोई नहीं है, बिना वेद पढे पाण्डित्य की धारा, शांत, विरक्त, प्रत्युपकार की इच्छा के बिना जगत् पर उपकार करने वाली, घास खाकर अमृत उत्पन्न करने वाली, सत्व की मूर्ति-सिवाय गौ के संसार में कौन है? प्यारे सज्जनो! दूध तो भैंस भी देती हैं, बल्कि, गौ से ज्यादह और अधिक गाढा देती हैं, परन्तु भैंस का दूध काम-क्रोध उत्पन्न करने वाला है, आप एक 'गौ का बछडा, और एक भैंस का पाड़ा ले आइये, दोनों को एकही घास खिलाइये और ध्यान देकर दोनों के स्वरूप को देखिये, गौका पाडा कितना शांत होगा और भैंस का पाड़ा कैसी डरावनी सूरत दिखा-वेगा, काम क्रोध की मूर्ति ज्ञात होगा, इसीलिये शिवजी ने अपने वाहन के लिये गौ का बछड़ा पसन्द किया और यमराजने अपनें स्वरूपानुरूप भैंस का बछड़ा लिया जगत्में सत्वगुणका भण्डारा ४ जगह भरा हुआ है और चारों हमारी सत्वमूर्ति माताएँ हैं, एक जननी माता, दूसरी गोमाता, तीसरी गङ्गा माता और चौथी सरस्वती माता, जननी माता के निरपेक्ष स्नेह को कौन नहीं जानता? श्रुति भगवती भी 'मातृदेवी भव' का उपदेश कर रही

हैं, परन्तु हमारी गोमाता की योग्यता सच पूँछिये तो जननी से भी बढ़-कर है, जननी तो अपनेही बच्चोंको प्रेम से दूध पिलाती है और यदि दूसरा बालक पीने लगे तो उसे थप्पड लगाती है, इसके मुकाबले में हमारी गोमाता की उदारता देखलो कि उसके बच्चोंको तो रस्सी से बांध रखते हैं और आदमी दूध पी लेते हैं संसार भर में उसके पुत्र हैं, ए आदमी ! सिविलिजेशन के ठेकेदार ! क्या यही तुम्हारी सब श्रेष्ठता है !

भगवान् ने कहा है कि गौ मेरा रूप है, "सुखदुःखे समे कृत्वा," इस वैराग्य के परम सिद्धान्त को गौ ही पूर्णतया पालन करती है, उसपर जो प्रेम करता है उसे जैसा दूध देती है, वैसाही उसके गलेपर जो छुरा रखताहै उसे भी देती है, प्यारे दोस्तो ! इससे अधिक शांति कहां पाओगे !

यही सच्चा "युनिवर्सल ब्रादरहुड–सार्वत्रिक भ्रातृभाव" है, इस गौ से अधिक दयापात्र कौन है ? सज्जनो ! गौ के पुत्र की शांति और धैर्य को देखो ! उसपर तुम कितनाही बोझ लादो और कितनाही काम उससे लो वह कभी क्रोध नहीं करेगा, यदि तुमहीं को दया आजाय तो तुम उसे विश्राम दो या बोझ हलका करो, परन्तु वह यथाशक्ति गाड़ी खेंचताही रहेगा घोडे को यदि अधिक परिश्रम होजाय तो वह दुलत्ती चलावेगा और गधा पटक देगा, सज्जनो ! यह गौ के दूध का गुण है, इसी लिये शिवजी गौ के पुत्रपर 'अहं ब्रह्मास्मि' करके आरूढ हुए, हमारी जननी माता हमारे स्थूल शरीर का मल दूर करती है, गोमाता चित्तवृत्ति पवित्र करती है, गङ्गा माता और सरस्वती माता हमारे पापों को दूर करके उद्धार करती हैं, शाहनशाह अकबर के समय में कुछ धर्मात्मा और उदार चरित मुसलमान विद्वान् होगये, उनके, विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है कि "इन दो चार मुसलमान पै कोटिन हिन्दु वारिये," उनमें एक रहीम खानखाना थे, उन्होंने भगवती भागीरथी के विषय में एक जगह लिखा है कि "वैदिकी औषध खाय कछु न खाय तेरोंही पानकरे रसखान,

अरे सुधामयी भागीरथी—आख धतूरा खाय बसत शिव तेरे भरोसे" नीचे गौ का पुत्र, मस्तकपर भागीरथी, दोनों सत्वगुण की मूर्ति, बीच में कंठ में विष धारण कर शिवजी मृत्युंजय होगये, जिसने गङ्गास्नान, गो सेवा, गो दुग्धपान और श्रुति का भजन किया वह साक्षात शिवरूपहै, चौथी माता सरस्वती भगवती श्रुति है यह जिह्वाके मल को धो डालती है दो प्रकार की गौ सेवा कही गई है, श्रुतिरूपा गौ की सेवा ब्राह्मणों को अर्पण कीगई और स्थूल गौ की सेवा वैश्यों को बतलाई, एक निराकार है, दूसरी सगुण है. दोनों की अवनति से हिन्दू जाति का अधःपतन होरहा है प्रत्यक्ष श्रुतिरूपा गौ को कृष्ण गोपाल ही ने दुहा था, सज्जनो! यदि आप ध्यान धरकर देखें तो गौ की महिमा आपको बात बात में दिखाई देगी, साक्षात् अवतारों के विषय में देखिये नृसिंहावतार में कैसी क्रूरता थी? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र पूर्णावतार होने पर भी, महर्षि वसिष्ठ उनसे कहते थे कि तुम ब्रह्म हो और वे कहते थे कि मैं जीव हूँ, परन्तु जब कृष्णावतार में भगवान् ने गोपाल बनकर गौओं की सेवा भली भांति से की और यथेष्ट दूध-दही-माखन खाया तब गीता में निश्शङ्क होकर बड़े जोर से कहने लगे कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् मनुष्य देहके आनुषङ्गिक जो जीवत्वाभिनिवेश था वह गौ सेवा से एकदम हटगया, मेरे प्यारे दोस्तो! आप अपने को 'अशरफ उल मखलूकात' मानते हैं, परन्तु आपके मल मूत्र से दुनियां भरके रोगों की उत्पत्ति होती है. और कहीं इधर उधर पेशाब भी करो तो म्युनिसिपालिटी पकड़ लेती है. इसी के मुकाबले में गौ का मल मूत्र देखो; उसमें वह आश्चर्य महिमा है कि उससे दुनियांभर के रोग आरोग्य होजाते हैं—केवल इतनाही नहीं किन्तु जिस घरमें गौ हो. गोमूत्र और गोबर का विधिवत् उपयोग होता हो और गोरस का यथेष्ट सेवन किया जाता हो उस घरमें तुष्टि- पुष्टि--सन्तति- सम्पति सदैव निवास करती है और न प्लेग आसकता है, न कोई रोग आ सकता है, न किसी भूत पिशाच का प्रवेश हो, सकता है. उस घर में यदि कोई आवेगा तो वही मोरमुकुट वन्शीधर श्रीकृष्णचन्द्र माखन चुराने

के लिये आवेगा, देखलो कि गौ के दूध–माखन में कैसी अद्भुत महिमा है कि उसके लिये भगवान् ने चोर बनना स्वीकार किया, बड़े बड़े योगी- महर्षियों को हजारों वर्षों की तपश्चर्या से भगवान्मूर्ति का दर्शन न होसका परन्तु गोपियां घर में केवल दूध-माखन रखकर भगवान् को ले आई गौके माखन में वह आकर्षणशक्ति है कि बिना बुलाये भगवान् घर चलेआते हैं तुम मना करो तौभी भगवान् माखन को नहीं छोड़ेंगे, सज्जनो अधिक क्या कहूँ गो तो पवित्रता की मूर्त्ति है, जिस जगह गौ पेट भर के घास खाकर रोमन्थ करती बैठती है वहां से सब रोग कोसों भाग जाते हैं, उसके केवल निश्वास में ऐसा तेज है कि वह जहाँ पहुँच जाय वहाँ की वायु शुद्ध और पवित्र होजाती है प्लेग या हैजे के दिनों में हवा शुद्ध करने के लिये जो गन्धक और कोलतार आप जलाते हैं उनसे कहीं बढ़-कर शक्ति गौ के निश्वासमात्र में है, गोबर की तो बात ही क्या कहनी ? जालिम से जालिम जहर भी गोमूत्र और गोबर से नष्ट होजाता है, फिर अशुद्ध हवा साफ होगी इसमें कहना ही क्या ? घर में जहां लड़के खेलते हों वहां एक दो गौएं रखने से लड़कों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, जो नित्य गौ की सेवा करता है और अपने हाथ से गोमूत्र और गोबर उठाता है उसके हाथ को कभी त्वचा का रोग नहीं होसकता, शरीर के जिस जिस अङ्ग को गौ के मल मूत्र का सम्पर्क होता हो वह अङ्ग कभी विकृत नहीं होगा।

भगवान् तीन प्रकार से गोरस सेवन करते हैं एक होम-हवन में अग्नि द्वारा, दूसरे ब्राह्मण मुख से और तीसरे स्वयं गोपालों के घर में जाकर खालेते हैं, आजकल तो तीनों द्वार बन्द होगये हैं, न होम हवन है, न ब्राह्मण भोजन है, न कोई गोपाल है, इसी लिये संसार में कुवृष्टि, अकाल, प्लेग आदि विपत्तियें फैलरही हैं, गौ घास खाकर दूध पैदा कर-ती है, दूध से घी बनता है, ब्राह्मण तृप्त होते हैं, उससे श्रुति का प्रचार होता है, श्रुति से यज्ञ होते हैं, यज्ञ से मेघोत्पत्ति मेघ से वृष्टि और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, गौ की सेवा से इन्द्र तक आपकी सेवा करने को

उद्यत रहता है, "यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः" यह श्रुति इसी अर्थ को प्रतिपादन कररही है, आजकल न कहीं पहले जैसा गो दुग्ध है, न यज्ञ याग है और न वृष्टि है, एकमात्र दुर्भिक्ष, इन दिनों यज्ञ के धुवें की जगह चुरटों का धुवां खूब निकलता रहता है, परन्तु उस धुवें से वृद्धि भी वैसीही बेमोके होती है, मनुष्यों की तरह मेघों के भी कुल होते हैं, वेदोक्त विधि से यथा समय धर्मपत्नी में गर्भाधान करने से प्रशस्त संतति पैदा होती है और विधि विपरीत गर्भाधान से नीच सन्तति होती है, उसी प्रकार वेद मन्त्रों से विधिपूर्वक होम-हवन करनेसे जो धुवां निकलता है उससे कुलीन-प्रशस्त मेघ पैदा होकर यथा समय यथोचित वृष्टि करते हैं और केवल भाड़ कें या चुरुट के धुएँ से नीच मेघ पैदा होकर अकालीन या अति वृष्टि से देश का नाश कर डालते हैं, जैसा हवन वैसा फल, जैसा कर्म वैसा भोग, एक समय की वात है कि मैं जयपूर गया था, वहां एक ९०।९५ साल के बूढे ठाकुर मुझसे कहने लगे कि पंडितजी आजकल जो लोग धर्मोन्नति और देशोन्नति के लिये उद्योग करते हैं उनको चाहिये कि वे सब से प्रथम यज्ञ-याग होम हवन ये जो हमारे कर्मकाण्ड के प्रधान अंग इन दिनों लुप्त होगये हैं उनकी ओर विशेष ध्यान दें, क्योंकि इसी के अभाव से अतिवृष्टि अनावृष्टि होती है और जो अन्न पैदा होता है उसमें वीर्य नहीं है,उन्होंने मुझे एक भड़भूँजे की दूकानपर लेजाकर चने भूँजना दिखाया और कहा कि हम जब अपनी जवानी में चने भुंजवाते थे तब वे इतने उछलते थे कि कम से कम एक तिहाई बाहर गिरते थे,परन्तु अब आप देख लीजिये कि बाहर उछलना तो दरकिनार रहा परन्तु खप्पर के किनारे तक भी वे नहीं पहुँच सकते हैं, अब आप बतलाइये कि ऐसा निर्वीर्य अन्न खाकर हमारे में क्या बल आसकता है और हम क्या पुरुषार्थ कर सकते हैं ? प्यारे दोस्तो ! इस सारी अनर्थ परम्परा की जड़ गोरक्षा का अभाव है, इस बात को आप खूब जान लीजिये, भारतवर्ष के प्राचीन अभ्युदय काल में गोधन और अन्नधन इन्हीं को सच्चा धन समझते थे, आपने सुना होगा कि महर्षि याज्ञवल्क्य

जनक महाराज की सभा में जाकर ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करने लगे तब महाराजने प्रसन्न होकर महर्षि को प्रथम एक सहस्र गौएँ दीं, फिर जब प्रसन्न हुए और सहस्र दीं, इस प्रकार कई हजार गौ महर्षि याज्ञवल्क्य को महाराज जनक ने अर्पण कीं, आजकल मैं देखता हूं कि बड़े बड़े साहूकारों और जन्टलमेनों के घर में दस दस पांच पांच घोडे बँधे हुए हैं और घोड़े न हों तौ भी २।४ कुत्ते जरूर ही हैं, परन्तु गौ एक भी नहीं है, मुझे एक सेठजी एकदिन अपने घर लेगये थे, और वहां पहुँचते ही आपने अपनी बैठक के चारों ओर बैठे हुए अलग अलग जाति के ४ कुत्ते मुझे दिखाकर कहा कि पण्डितजी! ये कुत्ते हमने हजार रुपये में चीन और आस्ट्रेलिया से मँगवाये हैं और ये ऐसे हैं वैसे हैं वगैरह, मैंने सेठजी से पूंछा कि आपके यहां घोड़े कितने हैं! आप बोले चार हैं. फिर मैंने पूँछा गौएँ कितनी हैं! इसपर नाक भौं सिकोड़ कर कहने लगे पंडितजी हमें गौएँ पालने का शौक नहीं है, कलियुग तेरी बलिहारी है! हे भारतवर्ष! जब तेरी सन्तान ऐसी सुपात्र है तब तू गारत क्यों न होजाय! साक्षात् भगवान् विष्णु मोर मुकुटधारी गौ की सेवा करते थे और आजकल सभ्यताके ठेकेदार महात्मा कुत्तों की सेवा करते हैं और उन्हींका चुम्बन लेते हैं. कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये तीन वैश्यों के कर्म हैं. तीनों में से वाणिज्यका मूल कृषि और गोरक्षा है, इन दोनों में भी फिर कृषि की जड़ गोरक्षा है, जब जड़ही न रही तब 'नष्टे मूले नैव पत्रं न शाखा' कृषि भी गई और वाणिज्य भी जाता रहा, जब वैश्यों की अवनति हुई तब ब्राह्मण क्षत्रिय उससे क्योंकर बच सकते हैं? बैल के सींगपर पृथ्वी है यह कथन पारमार्थिक तथा लौकिक दोनों दृष्टि से यथार्थ है, संसार का पोषण अन्न से होता है और अन्न के लिये गौ की किस प्रकार जरूरत है सो पहले कहा गया है, वृष्टि होने पर भी बैल यदि न हो तो अन्न नहीं उत्पन्न होसकेगा, इसलिये संसार का आधार बैलही पर है, गौ बैल खेतों में निर्भय होकर घूमें और मलमूत्र करें तो उससे एक प्रकार का क्षार बनता है और उससे अधिक अन्न उत्पन्न होता है. राली ब्रादर्स जो लाखों मन अन्न प्रति-

वर्ष यूरोप को लेजाता है वह गौ के पुत्रही की बदौलत उत्पन्न होता है, उनको कहना चाहिये कि इसे आदमी नहीं उत्पन्न करते किन्तु दो सींग और चार पैर के बैल के परिश्रम का यह फल है, इसलिये उसकी और उसकी माता की रक्षा करने के लिये आप हमारे परमदयालु राजराजेश्वर एडवर्ड महाराज से प्रार्थना कीजिये, जब सारे संसार का आधार गौ पर है तब उसपर विपत्ति आने से संसार क्लेशित क्यों न होगा।

प्यारे दोस्तो! आपको यदि इस विषय को हमारे शाहनशाह के पास पहुँचाना है तो मजहबी जोश को छोड़कर बड़ी विनय और नम्रता के साथ, बड़ी प्रीति सौहार्दसे उन लोगों के द्वारा भेजिये जिनका कथन आपके मेरे कथन से विलायत में अधिक माननीय हो परन्तु मेरी आपसे विनय है कि जब आप स्वयं अपने कर्त्तव्य पालन में दक्ष नहीं हैं तब औरों को क्या कह सकते हैं? जब आप स्वयं गो पालन नहीं करते हैं जिसके लिये आपको कोई प्रतिबन्ध नहीं है तब दूसरों को उपदेश करने का आपको क्या अधिकार है इसलिये आप लोगों को चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य यथाशक्ति गो पालन करके यथेष्ट दूध दही स्वयं खाकर तथा औरों को खिलाकर तुष्ट पुष्ट होजाय और शान्ति-धैर्य-तथा सत्वगुण की वृद्धि करें, शाहनशाह अकबर के समय में रहीम खानखाना, अब्दुलफजल, फैजी वगैरह जो कितनेही ज्ञानी और सत्यप्रिय पुरुष होगये उन्होंने यथेष्ट दुग्धपान करके शाहनशाह से गोहत्या बन्द करवाई गोरस में ऐसीही अपूर्व महिमा है अब भी बहुत से अंग्रेज गो दुग्ध से पुष्ट होकर हिन्दू धर्मकी प्रशंसा करने लगे हैं, सज्जनो! यदि आप एक बार गो सेवा का आनन्द अनुभव करें तो त्रिलोकी का सुख आपको तुच्छ मालूम होने लगेगा, आपकी तो कथा ही क्या? श्रीकृष्णचन्द्र जब गोपाल बनकर व्रज में गो सेवा करते थे तब उसे देखने के लिये शिवजी कैलाश छोड़ कर चले आये, बूढा ब्रह्मा अपना ब्रह्मलोक छोड़कर चला आया और गौएँ चुरा कर लेजाने लगा, परन्तु वहां क्या कमी थी? जितनी ही गौएँ लेजाता था उतनीही फिर आजाती थीं पारमार्थिक दृष्टि से श्रुतिरूपा गौ अनन्त हैं,

अखण्ड हैं, उनकी कदापि त्रुटि नहीं होसकती, जिस गौ के लिये अचल ब्रह्म चल होगया उसकी सेवा में आपको आनन्द आजाय इसमें आश्चर्य नहीं है, केवल एकबार उसका रसास्वाद मिलना चाहिये, गोकुल में नन्द के आंगन में भगवान् को गौओं के बीच में नृत्य करते देख गोपियां एक दूसरे से कहने लगीं "शृणु सखि कौतुकमेकं यन्नन्दनिकेतनांगणे दृष्टम् गोधूलिधूसरांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः" इसका आध्यात्मिक अर्थ करने लगें तो सत्वगुणी इन्द्रियें ही गौएं हैं, देखनेवाली दो सत्वगुणी वृत्तियां हैं इत्यादि होगा, इस बार व्याख्यान को समाप्त करने के पूर्व मैं आपसे एक दक्षिणा मांगता हूँ और वह यह है कि जो बातें मैंने आज के व्याख्यान में कही हैं उनको अच्छी तरह ध्यान में रखकर उनके अनुसार यथा शक्ति गो पालन करके भारतवर्ष में दूध दही–माखन की समृद्धि कर दीजिये, पिछले साल जब मैं हैदराबाद गया था वहां कोई २५ । ३० व्याख्यान लगातार दिये थे उनमें कितने ही व्याख्यान केवल मुसलमानों की सभाओं में हुए थे, उनसे बिदा होते समय मैंने यही दक्षिणा मांगी थी कि यहां एक गोशाला बन जाय. उन लोगों ने मेरे कथन का आदर करके एक पिंजरा-पोल खोला है और उसमें बहुत से मुसल्मानों ने चन्दा दिया है और अपने खर्च से गोशाला के भीतर कुवें बनवा दिये हैं उसके बाद वैसीही दक्षिणा मुझे अमृतसर के लोगों ने दी है और वैसीही मैं आपसे भी मांगता हूँ और आशा करता हूँ कि आप उसको प्रसन्नता से देंगे कलकत्ते में अभी थोडेही दिन हुए गो सेवक स्वामी हासानन्द ने सन्तत परिश्रम करके एक बड़ी भारी गोशाला खोली है और वह दिनों दिन उन्नति कर रही है, यह आनन्द की वार्त्ता आपको सुनाकर मैं अपना आसन ग्रहण करता हूँ।

बम्बई २ । १० । १९०४

श्रीमान् पं० दीनदयालु जी महोदय का.
वैश्य धर्म-
पर व्याख्यान.

वर्त्तमान समय में जहां तहां कहा जाता है कि भारतवर्ष की अवनति ब्राह्मणों के कारण हुई है, ब्राह्मणों ने देश का सत्यानाश कर डाला, यदि हम इस कथन को मान भी लें तौ भी इस विषय में केवल ब्राह्मणही दोषीन ठहरेंगे इसका दोष चारों वर्णों पर आवेगा, ब्राह्मणों ने पढ़ने पढ़ाने के सिवाय किसी काम में अपना हाथ नहीं रक्खा, संसार के उपकार का बोझा अपने ऊपर रखकर अपना पेटतक दूसरों के हाथ रक्खा, फिर यदि उनका यथोचित सम्मान न होने से अथवा विद्वानों का निरादर होने और मूर्खों के पूजने से ब्राह्मणजाति कर्तव्य बिमुख होकर देश की अधो गति का कारण हुई तो इसका दोष ब्राह्मणों पर नहीं किन्तु क्षत्रिय और वैश्यों परही है, देश की अधोगति विशेषकर वैश्यों के कारण से हुई है, वैश्य चातुर्वर्ण्य समाज के स्तम्भ रूप हैं, जब स्तम्भ ही अस्तव्यस्त हुवा तब समस्त अङ्ग बेकाम क्यों न होंगे ? संसार का व्यापार और संसार परिचालन वैश्यों के हाथ है, ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व, क्षत्रियों के वीरत्व और राजा के कोष तथा शूद्रों के दास्य की कुंजी वैश्यों के हाथ व उनकी बही में है, वह अच्छे रहेंगे तो ही देश अच्छा रहेगा, उनके अधःपात के साथ देश का अधःपात अवश्यम्भावी है ॥

वैश्य के नाम के साथ "गुप्त" इसीलिये रक्खा जाता है कि देशस्थिति का मुख्य साधन जो व्यापार उसके रहस्यों को वह गुप्त रक्खें, परन्तु आज कल वैश्यजाति ईर्षा द्वेष में ऐसी निमग्न होरही है कि गुप्तपन उनके कार्य में नहीं केवल नाम में रहगया है, देखा जाता है, कि विलायत और अमेरिका के व्यवसाई आपस में मिलकर जिस बात का सिद्धान्त

करलेते हैं वह कभी दूसरोंपर प्रगट नहीं होने देते, परन्तु फूट के प्रसाद से भारत की वैश्य जाति ऐसी कर्तव्य शून्य होगई है, कि यदि चार वैश्य मिलकर कोई सिद्धान्त करना चाहें (पहिले तो कठिनही है) तो उनसे उसका गुप्त रक्खाजाना कठिन होगा एक वैश्य को बढतेहुए देख दूसरा उसका भण्डाफोड़ करने को उतारू होता है और उसका लाभ बिदेशी कम्पनियों के हाथ में जाकर देश के वैश्य दिवालिये बनजाते हैं, वैश्य जाति कभी लक्ष्मी की कृपापात्र थी परन्तु अब वह बात नहीं रही, लक्ष्मी ने वैश्यों को धर्महीन, कर्तव्य विमुख देख पश्चिम की ओर प्रयाण किया, यह सिद्धान्त है कि जिस देश में या समाज में चार करोडपति हैं उस देश या समाज का भार उन करोडपतियोंपर आपडता है, परन्तु आजकल समाज की कौन कहे, पडोस में पडोसी भूखों मरता रहता है और सेठजी के यहां गुलछर्रे उड़ा करते हैं, ऐसे करोड़पति को धिक्कार है जिसके धन से अनाथ और विद्वानों का उपकार न होसके, आजकल वैश्यों के दरवाजे पर चारों वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता पण्डित आवे और भूँख की असह्य वेदना के वश कुछ याचना करे तो सेठ जी उसे दुरदुरा देंगे और कहेंगे तुम हमारे सम्प्रदायके नहीं हो, हमारे गुरु घराने के नहीं हो, इसलिये तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, परन्तु अपने सम्प्रदाय वाले सण्ड मुसण्ड को सैकड़ों रुपये देंगे जिसका परिणाम यह होरहा है, कि स्वर्गीय भारतमार्तण्ड पंडित गट्टूलालजीसे विद्वानों का अभाव होरहा है और अविद्वान् ब्राह्मण बढ़ रहे हैं, जब वैश्यजाति से उनका सब मनोरथ सिद्ध होता है तब वह विद्या क्यों पढ़ने लगें ! यही कारण है कि ब्राह्मण बिगड़ चले और उनके साथही वैश्य जाति का भी अधःपतन होने लगा, अब जो कुछ शेष है उसकी रक्षा करके अपनी उन्नति करनी चाहिये, विद्वानों का आदर करो,और अविद्वान् ब्राह्मणों को विद्या में लगाओ जिससे तुम्हारा कल्याण हो और देशका सुधार हो ॥

कहने में लज्जा आती है परन्तु सङ्कोच छोड़कर कहदेना चाहिये कि आजकल वैश्य थान के थान कपड़े नाप डालते हैं तथा उलट पलट करते

हैं, सैकड़ों मनके गट्टर उठाते रहते हैं मनों अनाज तौले डालते हैं, तब तो उन्हें बोझा नहीं मालूम होता, परन्तु धेलेभर सूत (यज्ञोपवीत) का बोझा उनसे नहीं सम्हाला जाता, बहुत हुआ तो लडके बाले होजाने पर पंडित जी से यज्ञोपवीत लेने की प्रार्थना करते हैं, पण्डित जी भी कुछ प्राप्ति हो जाने के लालच से जनेऊ पहना देते हैं, किन्तु क्या इसे संस्कार कह सकते हैं। जब ८ वर्ष में ब्राह्मण ११ में क्षत्री और १२ वर्ष में वैश्य कुमार का उपवीत संस्कार करने की शास्त्रों की आज्ञा है तब वह एक तमाशा मात्र समझा जायगा, सच बात तो यह है कि १६ संस्कारों में अब वैश्यजाति में कोई भी अपने असली रूप में नहीं होते, केवल गोदान और कन्यादान शेष रहे हैं सो गोदान में अपात्र और कन्यादानके उत्सव में रण्डियों का घर भरता है, संस्कार हीन होने से वैश्य व्रात्य होरहे हैं और श्राद्ध तर्पण आदि करने पर भी पितरों की तृप्ति नहीं होती है वैश्यजाति को ब्राह्मण कर्म छोडकर सब वैदिक कार्य करने का अधिकार है, अतएव वह वेद पढें, धन लगाकर अपने गुरु ब्राह्मणों को विद्वान् बनावें, १६ संस्कार करें, सन्ध्या गायत्री का अर्चन करें, पञ्चयज्ञ करें और यथार्थ वैश्य बनकर अपने असली प्रभाव को प्राप्त करें, तब अवश्य ही वे अपनी उन्नति के सिवाय देश की उन्नति भी करसकेंगे, यदि ऐसा नहीं करेंगे तो संस्कार हीन होने से उनमें वैश्यत्व का नाम भी नहीं रहेगा ॥

वैश्य का सबसे प्रधान धर्म सत्य बोलना है, सत्य को लेकरही वैश्यत्व है परन्तु आज कल वैश्य जाति सत्य से बहुतही पराङ्मुख होती जाती है, इन दिनों जिस तरह ब्राह्मण का धर्म भिक्षा मांगनाही बाकी रहा है उसी तरह व्यापार में झूँठा व्यवहार करना और बहीमें झूँठ लिखनाही बहुतेरे वैश्योंने अपना धर्म और अपने व्यापारकी उन्नति का सरल उपाय समझ रक्खाहै, बड़े खेद की बात है कि वैश्य जिस हाथ से दिनरात सोना, चांदी और जवाहि-रात तोलते हैं उसी हाथ से सत्यता के साथ धर्म को नहीं तौलते, धर्मका ख्याल न रहने से ही बालक विवाह, बृद्ध विवाह जैसी कुरीतियें वैश्यों में चलपड़ी हैं, वेदाध्ययन के बदले उन्होंने वेश्यागमन, में प्रीति बढाई

है, ब्राह्मण से धर्मतत्व सीखने के बदले पानी भराना और लड़का खिलाना आरम्भ करवाया है, परन्तु भाई तुम्हारी शोभा जब तुम उनसे धर्मामृत भरवाकर पियो. खरे खोंटे की पहचान करके शुद्ध ब्राह्मणों की बृद्धि करो, जाति की उन्नति के लिये भाषा, वेश और भाव ये प्रधान हैं, इसलिये अपने देश का वेष बनाये रक्खो, परदेशी देश से लंगूर न बनो, नहीं तो न इधर के रहोगे न उधर के, क्योंकि समाज से स्वयं घृणा करके अलग होजाओगे और जिनकी नकल करते हो उनके यहां से भी दुरदुराये जाओगे. मातृ भाषा का समाज और कुटुम्ब में सदा व्यवहार करो! हां विदेशियों के साथ अथवा आवश्यकता पड़ने पर भलेही विदेशी भाषा का उपयोग किया जाय, किन्तु विदेशी झोंक में आकर अपने कुटुम्ब और माता पिता के साथ अयोग्य बर्ताव नहीं करना चाहिये, आजकल के सुपूत साहबी झोंक में आकर अपनी प्राचीन रीति के वस्त्रभूषण से भूषित माता पिता को देखकर बहुत शरमाते हैं, और उनका तिरस्कार करने लगते हैं, अपना भाव बदलने से जाति की विशेषता जाती रहती है, इसलिये अपना जातीय गुण और भाव स्थिर रक्खो जननी, जन्म भूमि, जाति, जाह्नवी. और जनार्दन पर प्रीति रक्खो जिससे तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि व्याख्यान का मूल यदि यहां के वैश्य समझेंगे तो अपनाही नहीं किन्तु देश का बहुत कुछ कल्याण साधन कर सकेंगे इस गई बीती दशा में भी बम्बई की वैश्य जाति धनवान् है इसलिये यदि वह चाहें तो अपने धनका सदुपयोग करके अपने गुरु ब्राह्मणों में विद्या प्रचार के लिये और धर्म साधन के लिये इस समय कुछ स्थाई प्रबन्ध कर सकते हैं॥

बम्बई १२। ८। १९०४ ई०

वर्ण व्यवस्था ।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥

पूर्व पक्ष ।

अन्य देश वासियों की दृष्टि में हमारे सब पदार्थ निषिद्ध हैं, ऐसा दर्शाने में उन्होंने कोई त्रुटि नहीं रक्खी, उनके अनुयायियों और अनुचरों की दृष्टि में भी ऐसाही समाया है, जो हमारे ही देशी भाई हैं, इन महात्माओं ने जहांतक (मूर्खता) के शब्द को दृढता से पकड़ लिया है, अब उनको हमारी सब बातों में, सब कामों में और सब रीति नीति में जहालत घुसी हुई दृष्टि पड़ती है, यह लोग अपने व्याख्यानों में अपने लेख में यही प्रकट करते हैं कि हिन्दुओं की सब बातें मूर्खता की हैं । इसी प्रकार वह वर्ण भेद कोभी मूर्खता का केन्द्र कथन करते हैं, इन नव शिक्षित महाशयों का और उनके म्लेच्छ यवन अध्यापक लोगों का कथन है कि सब ईश्वर की सृष्टी है, इनमें वर्ण भेद कैसा ? ब्राह्मण क्षत्रिय क्या ? वैश्य शूद्र क्या ? कायस्थ क्षत्रिय क्या ? डोम चमार क्या ? यह वाहियात भेद क्या है ? यह उच्च और नीच क्या ? ब्राह्मण चांडाल के स्पर्श से क्यों नाक भौं चढ़ाता है और यदि ब्राह्मण किसी चाण्डाल से छू जाता है, तो वह स्नान क्यों करता है ? इन कल्पित उच्च नीच जातियों का खान पान एक क्यों नहीं होता ? जिसने चाण्डाल को सृजा है, उसीने ब्राह्मण को भी उत्पन्न किया है, जब कि सब एक पिता की सन्तान हैं तो भाई भाई में भेद क्यों ?

ऐ ब्राह्मण भू देवो ! समय बड़ा टेढ़ा आया है ? अब हृदय की गांठ खोल डालो, चिरकाल की सञ्चित मूर्खता का भण्डार फूँक दो ? कुलाभिमान को शनैः शनैः कम करो ? अब अपने को उच्चतर मत मानो ! समझलो तुम्हारे बूढे बड़े शास्त्र के बनाने वाले थे औरों के लिखने पढने मार्ग को रोके हुए थे वह लोग जो कहते वही शास्त्र था ? कोई उनसे इनकार नहीं

करसकता था, उन्होंने अपनी लेखनी से अपनी बड़ाई आप लिखी है, उसीके अनुसार अद्यावधि काम चला आता था परन्तु अब न चलेगा ? अब वह समय नहीं है अब सब लिखना पढना सीखते हैं, बहुत से सीख गए हैं और बहुत से पण्डित और विद्वान् भी हो गए हैं। अब टुक मानसिक विचारों को पलट डालो और ऐ शूद्र साहिबो ! अब तुम्हारा नीच दशा में निर्वाह करने का अवसर नहीं है और न कोई कारण है कि तुम अपने को सेवक मानो और ब्राह्मणों को देखतेही प्रणाम करो, क्यों क्या इससे कुछ लाभ है, जिसकी न प्रतिष्ठा है और न श्रेष्ठता वह तृण से भी हलका है, उसकी उन्नति किसी प्रकार नहीं होसकती, इसीसे अपनी प्रतिष्ठा का विचार करो और उच्च बनो और हे नीच जातियो ! ब्राह्मणोंने तुम्हारा बड़ा सत्यानाश किया है तुमको इस अधोगति को पहुँचाया, उन्होंने तुमको शिक्षाध्ययन मात्र से बहिष्कृत किया वह तुम्हारे पूर्ण शत्रु हैं, फिर तुम उनको क्यों प्रणाम करते हो ? तुम्हारे पिता पितामहाओं को इन ब्राह्मणों ने विजय करके दास बनाया, पहिले वह बहुत थे परन्तु अन्त में ब्राह्मणों के अन्यायाचरण से मर खप गए, इससे इन अन्यायी ब्राह्मणों को प्रणाम मत करो ? मूर्खता के कारण प्रथम तुम इनकी बातों को नहीं समझते थे, परन्तु अब वह समय नहीं है शिक्षा तुम्हारे लिए विद्यमान है, नेत्र खोलो और देखो कि तुममें और ब्राह्मणों में क्या अन्तर है ? जो दो हाथ और दो पैर उनके हैं, वही तुम्हारे हैं, जो दो नेत्र और दो कर्ण उनके हैं सोही तुम्हारे भी हैं, फिर क्या तुमसे अधिक उनके सिर पर सींग हैं जिससे वह तुम से श्रेष्ठ बनते हैं ? नहीं वह कुछ भी श्रेष्ठ नहीं हैं। यदि तुम बराबरी का विचार करो तो बराबर ही हो। इसके लिए न तो सेना की आवश्यकता है न युद्ध और न लड़ाई की, ऐक्यता करो ! एक हो जाओ !! जातिभेद को दूर करो !!! तो तुम आजही ब्राह्मणों की समान होसकते हो ?

ऐ क्षत्रिय शूर बीरो ! तुम्हारे पुरुषाओं ने ब्राह्मणों के समान होनेके लिए बहुत युद्ध किया है ब्राह्मणों की चातुर्य्यता से कृतार्थ न होसके

परन्तु अब कृतार्थ होना सहज है तुम ब्राह्मणों के समान होसक्ते हो, इसके लिए तुमको अपने से कम वैश्य शूद्रादि के समान भी होना पड़ेगा। और हे वैश्य धन पात्रीगण ! धनके पति तो तुम हो, ब्राह्मण तो तुम्हारे याचक हैं और क्षत्रियों को भी तुम्हारा आश्रय है फिर तुम उसके अधःकोटि में क्यों हो ? वैश्यों का उपकार करो पढो, लिखो, पण्डित बनो और स्मरण रक्खो, यदि ईश्वर को उच्च नीच बनाना स्वीकृत होता तो तुमहीं सबसे उच्च नते, और हे भारतवासी चाण्डाल साहबो ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से बचकर क्यों निकलते हो तुम अपराधी नहीं हो, खूनी नहीं हो ! आओ भाई ! तुम हम सब ब्राह्मण क्षत्रिय सब समान हैं ऐसे नीचे मत रहो।

उत्तर पक्ष।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

हिन्दु धर्म का नाश ? इस मूर्खता पर !! कैसे हिन्दू संकुचित चित्त हैं सब भाइयों का ऐक्य और जाति अभेद इनको स्वीकार नहीं इससे अधिक हृदय विदारक और क्या बात होसकती है ?

यह हमारे सुसभ्य नवीन रोशनी वाले भाइयों, जेन्टिलमेन वाबुओं, चन्दा मांगकर आश्रम बनाने वाले सपत्नीक संन्यासियों और अपने कन्धे पर रिफार्मरी का जुआ रखने वाले देशहितैषियों के विचार हैं। विचार उनके कल्पित हैं अथवा यथार्थ यह हम नहीं कह सकते परन्तु यह अवश्य है कि यह बाबू लोग अपने नौकरों पर अवश्य क्रोध करते हैं उनको वैसे कपड़े नहीं देते हैं, जैसे आप पहिनते हैं और न मैले कपड़े वाले नौकर को साथ खिलाते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आप सभी मिल गिद्धों-वाली दावत का मजा अवश्य उड़ाते हैं, इनका जाति विचार खाने तक समाप्त है शेष अपने धन का तुल्य भाग यह किसी से नहीं करते हैं अस्तु, इस समय इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, विचार है दूसरी बात पर क्या यह विचार सत्य है ? और सच मुच ईश्वर को

जाति भेद अथवा वर्णभेद स्वीकृत है वा पुरुष का बनाया है, परन्तु बात इस प्रकार की नहीं है, वर्णभेद कल्पित नहीं है वरंश्च यह वेद शास्त्र विहित है, और साइन्स से भी यह सिद्ध होता है कि वर्ण भेद प्राकृतिक है, इस समय इस बात का विचार वृथा है कि सृष्टि का कर्ता ईश्वर है अथवा ब्रह्मा, प्रकृति इसे बनाती है अथवा स्वयं बनजाती है, बाबू साहबों और साइन्स के चेलों के बड़े गुरु मिष्टर डारविन से लेकर बड़े बड़े साइन्सवादी और हिन्दुओं के पण्डित सबका कथन है कि पुरुष से पहिले कीटादि जन्तु उत्पन्न हुए और इनसे भी पूर्व वृक्ष बने थे, यथा विष्णुपुराण में लिखा है कि:-

पञ्चधावस्थितेः सर्गं ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृत्तात्मा नगात्मकः ॥ १ ॥
मुख्यानगायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततः स्वयम् ॥
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरम्पुनः ॥ २ ॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोताभ्यवर्तत ॥
यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तःसातिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः ॥३॥
पश्वादयोत्रविख्याता स्तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ ४ ॥
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकः ॥
अन्तप्रकाशास्तेसर्वे, आवृताश्च परस्परम् ॥ ५ ॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्धमवर्तत ॥ ६ ॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरंतस्त्वनावृताः ॥
प्रकाशाबहिरंतश्च ह्यूर्द्धस्रोतोभवाः स्मृताः ॥ ७ ॥

तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥
यस्मिन्सर्गेभवप्रीतिर्निष्पन्नं ब्रह्मणस्तथा ॥ ८ ॥
ततोऽन्यं स तदादध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥
असाधकांस्तुताञ्ज्ञात्वामुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ॥
प्रादुर्बभूववाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥
यस्मादर्वाक्प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ॥
तेच प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥
तस्मात् ते दुःखबहुला भूयो भूयश्चकारिणः ॥
प्रकाशाबहिरन्तश्च मनुष्या साधकाश्च ते ॥

विष्णुपुराण प्रथम अंश अ० ५ श्लोक ६ से १७ तक

इसका भाषार्थ यह है कि ब्रह्माने सृष्टि को उत्पन्न करने के लिये विचार किया. तब वृक्ष उत्पन्न हुए। इन वृक्षों में पांचों प्रकार के वृक्ष झाड़ी बेलादि सब आ चुके। यह सब विद्या हीन थे अन्दर बाहिर से सर्वथा अज्ञानी, बेसुध। ब्रह्मा की यह पहली उत्पन्न की हुई वस्तु प्रथम सृष्टि के नाम से प्रसिद्ध हुई, ब्रह्माजी ने इससे अपना मनोरथ सिद्ध होते न देखकर और सृष्टि हुई। कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, सब इसके अन्तर्गत हैं, यह सृष्टि तमप्रधान थी और सत्य के ज्ञान से शून्य कुपथगामी और मूर्खता-की बुद्धिमत्ता समझनेवाली, इनको सुख दुःख का बोध होने पर भी यह मूर्ख थे, अर्थात् यद्यपि इनको सुख और दुःख का ज्ञान था परन्तु जान बूझ कर दुःख में फँस जाते थे। दान के लिए जल का विचार न करते थे, इसलिए इससे भी ब्रह्माजी को सन्तोष न हुआ, और दूसरी सृष्टिका विचार किया अर्थात् सत्व प्रधान देवतालोग उत्पन्न हुए। यह लोग अन्दर बाहिर के जानने वाले, और सुख स्नेह प्राप्त करनेवाले और सब स्थानों में

प्रकट होते हुए इनसे ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए फिर मनुष्यों की रचना की यह सत्व, रज,तम, प्रधान दुःख से मिले हुए और अन्दर बाहिर के अच्छी प्रकार जाननेवाले थे। इन लोगों को कर्म अधिकारी और ज्ञान अधिकारी देखकर ब्रह्मा बहुतही प्रसन्न हुआ।और समझा कि यही प्रयोजनकी वस्तु है।

प्रकृति नियम बड़ेही अद्भुत और विचित्र हैं, इसी से सृष्टि और ईश्वर का कौशल प्रतीत होता है कोई वस्तु सृष्टि ऐसी नहीं है कि जिसमें वर्ण भेद और जाति भेद न हो जिस समय जगत् में मनुष्य का नाममात्र भी न था और हमारे सुसभ्य बाबू लोग जिस मनुष्य समुदाय को "सब समान हैं" कहकर पुकारते हैं भविष्यत्काल के उदर में था उस समय भी जाति भेद और वर्ण भेद विद्यमान था, यह सृष्टिकर्ता अपने मानसिक विचार को नहीं जानते थे क्या वह सर्व गुण सम्पन्न और सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ जगदीश्वर यह नहीं समझता था कि उसकी अभिलाषा क्योंकर पूरी होसक्ती है अथवा प्रकृति में यह शक्ति न थी कि केवल वृक्षों को ही उत्पन्न करती। मनुष्य और जीवों को उत्पन्न न करती। बात यह कि जगदुत्पत्ति का कारण न कोई जानता है और न किसी में जानने की शक्ति थी, पहले पांच तत्त्व [पदार्थ] थे पीछे पशु हुए, फिर देवता हुए यदि आप देवताओं की शक्ति के भी मानने वाले नहीं हैं तो मनुष्य हुए मनुष्य सब से श्रेष्ठ और वही सब से पीछे हुआ है, अब सृष्टि को चाहे ब्रह्मा ने उत्पन्न किया, चाहे प्रकृति ने, परन्तु यह बात स्पष्ट है कि रचने वाले ने भांति २ की सृष्टि उत्पन्न की, यही तो एक अद्भुत बात है यह भेद ही तो विस्मय जनक है, अब तुम प्रकृति की विचित्र और अद्भुत शक्ति पर विचार करो, देखो सब से प्रथम पांच तत्त्व जो निर्जीव थे उत्पन्न हुए जिनके नाम अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश हैं, अब यदि आप आकाश तत्त्व को भी न मानें, तो चार पदार्थ अथवा तत्त्व वायु, तेज जल और पृथिवी को तो अवश्य मानेंगे।

इनसे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण प्रकट हुए। और यह विभाग उस समय भी था, जब कि महात्मा मनुष्य संसार में नहीं

पधारे थे, वायु के गुण देखो, शान्त है, कोमल है और वेगवान है तथा बलिष्ठ है, निर्मल है, शुद्ध सर्वोपकारी है, इस की पवित्रता, कोमलता और वेग को देखकर निःसन्देह ब्राह्मण कहने को चित्त चाहता है देखो वायु सब के साथ है परन्तु सब से पृथक् भी है दूसरों को लाभ पहुं-चाता है अपने लाभ से इसे कुछ प्रयोजन नहीं यही ब्राह्मणों के गुण हैं।

अग्नि तेजवान है और तीक्ष्ण है इसमें क्षत्रियत्व टपकता है जलते हुए अङ्गार की प्रचण्ड ज्वाला को देखकर कौन कहता है कि वीर क्षत्रियों को इस की उपमा न दीजावे, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अग्नि के और क्षत्रियके एक गुण हैं, वह सदैव उद्योग करती है और यह भी गुण क्षत्रियों का है। इसी प्रकार जल के गुण वैश्य के से हैं, वह खेतों को जल प्रदान करता है, खेतों की उन्नति का कारण है, अधूरे को पूर्ण करना जलही का गुण है, सदा शीतल है, सर्व प्रिय है, आहा! वैश्य के जल से क्या अच्छे गुण की समानता है, अब रही पृथिवी सो वायु, अग्नि, जल, सबको पृथिवी से सहायता मिलती है, चलने का स्थान पृथिवी के बिना और कोई नहीं आदि पुरुष के दोनों चरणों से पृथ्वी बनी है, जैसा कि श्रुति कहती है।

॥ पद्भ्यांभूमिः ॥

और तीनों वर्णों के सेवक चरण हैं, भगवान् के चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति है, इसी से पृथिवी की उपमा शूद्रों से होसकती है और वास्तव में सत्य भी यही है, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के गुणों की समानता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से दिखाई गई है, जबकि पांच तत्त्वों के कथन में आकाश की भी गणना है, इस लिए आकाश की समानता तपस्वी ब्राह्मण की भव्य और पवित्र मूर्ति से देते हैं, चाहे आधुनिक सुसभ्य बाबू मानें, अथवा न मानें, क्योंकि यही वर्णभेद के मूल हैं।

पाठक वृन्द! आप नेत्र खोल कर समस्त ब्रह्माण्ड की ओर देखिए, उसमें किस प्रकार वर्ण भेद और जाति भेद प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है,

ईश्वर ने पञ्चभूत के अनन्तर वृक्ष फल आदि उत्पन्न किये । इनमें वर्ण भेद विद्यमान है। यज्ञ की पवित्र कुशा ब्राह्मण रूप है, ऊंचे ताल खजूर आदि उच्च तन क्षत्रिय हैं, नीम गूलर आदि वैश्य हैं, बबूल जन्टादि दृढ और कुरूप वृक्ष शूद्र हैं। गूढ विचार से देखो कि इसी प्रकार इनका वर्ताव संसार में होता है या नहीं। यही भेद पांचों प्रकार के छोटे बड़े वृक्षों में जारी हैं, इसी प्रकार पशुओं में भी यही भेद विद्यमान हैं । देखिये शास्त्र का यह वाक्य क्या कहता है:—

ब्राह्मणश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठंति हविरन्यत्रतिष्ठति ॥

ब्राह्मण और गौ वास्तव म एकही हैं केवल इनके दो भेद हैं, एक तो यज्ञ करने वाला मन्त्र है और दूसरा यज्ञ करने वाली सामग्री है । अर्थात् ब्राह्मण मंत्र पढ़ता है और गौ से घृत दुग्धादि होम की सामग्रियें उत्पन्न होती हैं, महाभारत में भी जहां च्यवन ऋषि की कथा है, वहां लिखा है कि गौ और ब्राह्मण का एक मूल्य है, अर्थात् अमूल्य पदार्थ हैं इसी से पशुओं में गौ ब्राह्मण हैं, सिंह क्षत्रिय है, महिष बकरी आदि वैश्य और ऊँट अश्वादि भारवाही जीव शूद्र हैं। पवित्र यज्ञ का कार्य पूरा करने वाली गौ ब्राह्मण हो सकती है या नहीं? बलवान् सिंह को क्या क्षत्रिय नहीं कह सकते? सब को लाभ देनेवाली भैंस और बकरी क्या वैश्य कैसे गुण नहीं रखतीं? इसी प्रकार भारवाही ऊंट घोडे आदि भी शूद्र हैं॥

नवशिक्षित क्षत्रिय महाशय उत्तर दें, कि सिंहकी समानता क्षत्रिय में ठीक नहीं है। कहिए यह "सिंह" शब्द जो आपके नाम के साथ होता है, यह सिंह का पशुओं में क्षत्रिय होना प्रकट करता है या नहीं?

पाठक महोदय! आपने देखा पञ्चभूतों में चार वर्ण विद्यमान हैं। फिर वनस्पति में चार वर्ण हैं, सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सिंह, हस्ती, वृषभ, भैंसा, गैंडा, बड, पीपल, खजूर, सर्प, छछूंदर और कपि (बन्दर) सब अपना वर्ण भिन्न २ प्रकट कररहे हैं । अब हे नवशिक्षित

प्रतिष्ठाई महाशयो ! और हे अन्य देशवासी महोदयो ! बताओ यह भेद किसने किया है ? किस की मूर्खता है, यह किस प्रकार भेद हुआ है ?

बिचारे पशु और वृक्ष तो यह न समझते थे, कि अपनी पृथक् २ समाज और पृथक् २ आश्रम करलो। लंगूर का मुख काला और पूँछ लम्बी कर देते, सिंह के नख तीक्ष्ण फाडनेवाले और हस्ति की नाक पृथ्वी तक लम्बी लटका देते, अवश्य यह ईश्वर ही ने अथवा प्रकृति ही ने किया है। हम ईश्वरकी शक्ति में दखल नहीं देसकते और नहीं कहसकते कि क्यों नहीं उसने सब जीवों को एकही रूप का बनाया। परन्तु ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्यमेव ईश्वर को वर्ण भेद स्वीकृत है।

आप लोग तो शास्त्र पढे ही नहीं और यदि पढे हों तो उसे मानते नहीं, इसलिए आपको शास्त्रों की दोहाई देना वृथा है। परन्तु आइए, पधारिए ! युक्तिबल से दो २ बातें करें और उनको प्राचीन शास्त्रों से मिलाते जाओ, कि वर्ण भेद और जाति भेद ठीक है या नहीं?वह न्याय से भरपूर है अथवा ब्राह्मणों की स्वार्थता है। देखो वृक्षों के कई प्रकार के भेद हैं। और उनके आहारों से प्रतीत होते हैं। परन्तु क्या बाह्याकार से ही भेद प्रकट होसकता है? किसी और प्रकार नहीं ? अवश्य होसकता है, इसीलिए तो ईश्वर वनस्पति और पशुओं को बनाकर सन्तुष्ट न हुआ। एक भेद और है उसका नाम अतिरिक्त भेद है। जब ईश्वर ने देखा कि और सृष्टि में यह गुण नहीं है तो उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया, इसका भेद बड़ा विचित्र और अद्भुत है। और सृष्टि में विस्मय जनक है। देवताओं के अनन्तर भी मनुष्य के उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई। यही मनुष्य का गौरव है। इसमें तीन गुण से भरेहुए मनुष्य को अर्थ, काम, और मोक्ष होता है। यह बात देवताओं को भी अप्राप्य है। देवताओं को सुख और आनन्द प्राप्त है मनुष्य उद्योग करके देवताओं के समान प्रत्युत उनसे उच्चतर हो सकता है,परन्तु देवता उद्योग करके मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं होसकता। मनुष्य जो अक्षय पद प्राप्त कर सकता है, उससे कोई बढकर पद नहीं। मनुष्य के समान पद

प्राप्ति के लिए देवता को चिरकालकी आवश्यकता है । इससे मनुष्य की श्रेष्ठता है । जिस आन्तरिक परिवर्तन अथवा आन्तरिक चिह्न का हमने ऊपर नाम लिया था उसके अनुसार मनुष्य ही बनाता है । पांचों तत्त्वों में वह बात नहीं है, वृक्षों में भी न होने के समानही है। पशुओं की अवस्था इनसे कुछ श्रेष्ठ है, क्योंकि इन सब का भेद बाह्य लक्षणों से नहीं है, और यदि कुछ है तो गणना में नहीं, मनुष्यों का वर्णभेद नितान्त आन्तरिक है, इससे भी सृष्टिकर्ता के अद्भुत कौशल का परिचय पाया जाता है। किसी गूढ़ विचार से जीव जड़ सब का भेद परमात्मा ने किया है, परन्तु कहीं आकार में कहीं शरीरान्तर्गत, अन्तिम स्थानही भेदको पूर्ण करता है, यह आन्तरिक चिह्न भी बाह्य चिह्नों की भांति कुल में परम्परा चलेआते हैं अर्थात् जिस प्रकार अन्य जीवोंका बाह्य चिह्न कुलपरम्परा से चला आता है, इसीप्रकार मनुष्यका भी आंतरिक चिह्न कुलपरम्परा से है। सिंह का युवा बच्चा भूँखा प्यास। दुर्वल रोग ग्रस्त होने से भी सिंह का ही पुत्र है, और लोगों को उस आकार मात्रसे ही भय होता है, परन्तु गर्दभ यदि सिंह का मृगान भी ओढकर निकले तो वह गर्दभही रहता है । हस्तीका बच्चा कैसा ही स्थूलाकार और बलवान भी हो सिंहके निर्बल शावके (बच्चे) का सामना कदापि नहीं कर सकता, गौ कैसी निर्बल और बलहीन हो खरी से उसकी अधिक प्रतिष्ठा है ।

कःपरित्यज्यदुष्टांगां दुहेच्छीलवतींखरीम् ।

अर्थात् दुष्टा गौ को त्यागकर कोई सुशीला खरी को न दुहेगा, आन्तरिक चिह्नों से सम्बन्ध होने पर भी पशुओं का जाति भेद बाह्य के चिह्नों से लिया जाता है, उनके आन्तरिक चिह्नों में अन्तर होनेपरभी बाहिर के चिह्नोंसे ही उनकी कुल परम्परा मानी जाती है। मनुष्यों का वर्ण तथा जाति भेद आन्तरिक समझा जाता है, इसलिए वह और जाति को शामिल नहीं कर सकता, कोई पुरुष कैसाही शुद्धाचार और योग्य क्यों न हो, परन्तु इससे वह किसी और वर्ण अथवा जाति में दाखिल होने के योग्य नहीं

होसकता; क्षत्रिय अथवा शूद्र विद्या और अनुष्ठान में बहुत बढजाने से अथवा अपने सदाचार की श्रेष्ठता करने से ब्राह्मणका सवर्णी नहीं होसकता, हस्ती का हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट बालक हस्तीका बच्चा कहलाकर शोभा पासकता है, परन्तु कोई उसकी हृष्ट पुष्टता से उसे सिंह का बालक न कहेगा, इसी प्रकार शूद्र यदि बहुत बढ जाय अथवा आचार विचार में ब्राह्मणों के समान होजाय तब भी वर्णमें ब्राह्मण नहीं होसकता, इसी प्रकार निर्बल और अनपढ ब्राह्मण भी ब्राह्मण वर्ण से पतित नहीं हो सकता, इसमें कुछ सन्देह नहीं किन्तु उत्तम कर्मों और शुद्धाचार से अपने वर्ण में श्रेष्ठ होसकता है।

अब एक बात शेष है और वह यह है कि यदि ब्राह्मण वेदाध्ययनादि के न करने से जाति से बहिष्कृत नहीं होसकता, तो म्लेच्छों के साथ खाने से क्यों खारिज होसकता है। इसके विषय में हम इतना कहते हैं कि, जब मनुष्य निर्बल रोगी रहता है उसका शरीर रहता है, परन्तु मर जाता है, तो कोई भी उस शरीर को दाह किए बिना नहीं रहता। इसी प्रकार महा पाप करने से ब्राह्मण और क्षत्रिय का जाति वर्ण नष्ट होजाता है। अर्थात् मरजाता है, और वह बिरादरी से निकाल दियाजाता है, जबतक यह जाति नहीं मरती है, तबही तक वह ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय समझा जाता है (१) सत्वगुण, (२) रजोगुण, (३) रजतमो सत्वगुण, (४) तमोगुण–इन चारों गुणों से चार वर्णों का आन्तरिक चिह्न बनाया गया है, यथा शास्त्र में लिखा भी है।

शुद्ध विचार वाले ब्रह्मा ने सृष्टि को रचने के लिए जब इच्छा की, तो उसके मुख से एक ऐसी सृष्टि उत्पन्न हुई, जिसका स्वभाव सत्वगुण प्रधान था और बाहुओंसे रजोगुणवाली सृष्टि, और जंघाओं से रज और तमगुण वाली और पैरों से तमोगुणवाली सृष्टि उत्पन्न हुई, इनमें पहले ब्राह्मण, दूसरे क्षत्रिय तीसरे वैश्य और चौथे पैरों वाली शूद्र है।

ब्राह्मण चाहे कैसी पतितावस्था में हो, और अपनी विद्या और क्रिया कर्म को भूल गया हो, परन्तु उसकी सत्वगुणी वृत्ति बदल नहीं सकती,

हाँ उसकी शरीर की दशानुसार रुग्ण रहसकती है, इसी प्रकार क्षत्रिय चाहे कैसे ही सत्त्वगुण के लिए उद्योग करे, परन्तु उसकी प्रकृति तो रजोगुण से बनती है वह किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं होसकता। हाँ यदि ब्राह्मण विद्वान् है कर्मकाण्डी है, तो उसका सत्त्वगुण पूर्णमासी के चन्द्रमा की भांति प्रकाशवान् होगा, और क्षत्रिय अपने कर्म में पूर्णरूप से तत्पर होगा और सदाचारी होगा उसकी शूरबीरता मध्याह्नकाल के सूर्य की समान तेजोमय होगी, इसी प्रकार और जातियों के विषय में भी जानलो। यही सृष्टि नियम है और इसी सृष्टि नियम के प्रतिकूल जो लोग हैं, वह चांडाल और वर्णसङ्कर (दोगले) हैं। जैसे ब्राह्मणी और शूद्र का जाया महा नीच चांडाल (भङ्गी) कहा जाता है जबकि सत्त्वगुणवाली ब्राह्मणी तमोगुणवाले शूद्र से मिल दोनों की प्रकृतिका सत्यानाश होकर उच्च कोटि का तम उत्पन्न हुआ, और उससे घृणास्पद भङ्गी उत्पन्न हुआ, यह केवल उदाहरण है और जातियोंपर भी इसी प्रकार अनुमान करलो। स्पष्ट प्रतीत होता है कि जातिभेद ईश्वर को ही स्वीकार है, यहकिसी का गढा या बनाया हुआ नहीं वह मूर्खता से नहीं बना है प्रत्युत हिन्दुओंकी उन्नति के साथ उसकी उन्नति हुई है, पशुओं का वर्ण भेद शारीरिक है और मनुष्य का आन्तारिक, स्वाभाविक कुल परम्परा, परन्तु घोर पाप से प्रकृति और कुल दोनों ही मिट जाते हैं।

इस बातको हम पहलेही कहचुके हैं, कि ब्राह्मण का स्वभाव सात्त्विक है, इसी प्रकार क्षत्रिय का राजसिक, वैश्य का राजसिक और तामसिक और शूद्र का स्वभाव तामसिक है यह स्वभाव भेद हमको चारोंवर्णों के गुण, कर्म और अवस्था से ज्ञात होते हैं, शास्त्रने इसको बड़ी उत्तमता से दर्शाया है, परन्तु आप महाशयों के सामने युक्तिही से काम लिया जावेगा और जैसे आपके प्रश्न होंगे वैसेही उत्तर दिये जावेंगे, देखिये जैसे भारतवर्षमें अनेक प्रकार के पशु और आरण्यक जीव विद्यमान थे, जिनको किसी प्रकार की बुद्धि नहीं थी, यह नंगे फिरते थे और वृक्षों के फल पुष्प खाकर निर्वाह करते थे, इनको खाने, पीने, भूषण पहिनने, पुस्तक पढने

आर्य समाज के दफ्तर में नाम लिखाने, ब्रह्म समाज के मन्दिर में जाकर उपासना करने आदि बातों का कुछ भी विचार नहीं था।

सिंह, रीछ, भैंस, किसी से इनका रूप नहीं मिलता, पुरुषोंके से इन के नेत्र; कर्ण और नासिका थी शृङ्ग पुच्छ से हीन थे, तीक्ष्ण लम्बे डरावने दांत और फाड़ने वाले आंकड़ेदार नख अवश्य रखते थे, जिस समय इनमें मांसों का बल था, उस समय कोई मोलवी अथवा पण्डित इनको शिक्षा देने वाला न था, और न सभ्यता सिखाने वाला। जिसने उनको उस अवस्था में शनैः २ उन्नति के सोपान पर ले जाकर "हजरते इनसान" बनाया हो, केवल काल की विकराल गतिसे प्रकृति के नियम ने ही उनको इस नूतन अवस्था तक पहुंचाया, और उस समय के लोगों की समान अवस्था और एकसी बनावट होने परभी बहुतों को उन सबका शिक्षक बनाया, और उन शिक्षकों ने उस समय के पुरुषों को शिक्षा और सभ्यता से भूषित किया तो क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे, कि उनका स्वभाव अवश्य सामान्य पुरुषों से उत्तम था, अथवा यह कि प्रकृति ने अवश्य इनको और लोगों से श्रेष्ठतर गुणों से भूषित किया था? अस्तु आप लोगों का यह कथन हम विना किसी प्रकार के तर्क बितर्क स्वीकार करलेते हैं, कि ब्राह्मणों ने वर्ण भेद तथा जाति भेद केवल अपने आपको सर्वोत्तम करने को किया; परन्तु इसके साथ आपको यह तत्काल मानना होगा कि सबसे प्रथम ब्राह्मणही विद्वान् और बुद्धिमान हुए और सब से प्रथम उनको विद्या और बुद्धि पर अधिकार प्राप्त हुआ! अतएव ब्राह्मण वह लोग हैं कि जिस समय मनुष्य वनमानस की अवस्था में अज्ञानी और मूर्ख थे. उनसे उन्नति करके सब से प्रथम मनुष्यों के गुरू बने, केवल इस गुण के प्रताप से जो इस समय और वनमानसों की अपेक्षा प्रकृति ने उनको विशेष प्रदान किया था!

आज कल का समय आप लोगों की मनभावनी उन्नति का समय है, स्कूल कालेज, पाठशालाएं, मदरसे और शिशुशालाएँ विद्यमान हैं, प्रत्येक विद्या के पण्डित महाशय बाहुल्यता से मिल सकते हैं। इस समय विद्या पढना और सीखना सबको सुगम है, ऐसे समय में भी जो विद्या प्राप्त न

करसके, क्या वह नितांत कुबुद्धिवाला पुरुष नहीं है? पाठक वृन्द! आज वह समय है, कि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय सीखने के लिए उपाय विद्यमान हैं, बैठने को यदि उत्तम नहीं तो साधारण स्थान अवश्य मिल-जाते हैं, यह तो नहीं, कि निर्धन विद्यार्थी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा व्याकरण याद कर रहा है, आंधी चलती है और वृक्ष की शाखा के टूटने का भय है वर्षा होरही है और शीत के कारण कप कपी लगरही है भोजन के न मिलने से वृक्षों के फल पुष्प खाकर निर्वाह कररहा है. मनुष्यों की सङ्गति न मिलने से पशुओं में मिलकर रहता है। भाई! अबतो सहस्रों पुस्तकें, सहस्रों स्कूल, सहस्रों पाठशालाएँ लाखों, ग्राम, करोडों मनुष्य और मनों खाने पीने की सामग्रिएँ विद्यमान हैं, इससे सहज और सुगम तथा उत्तम अवसर विद्या प्राप्ति करने का क्या और होसकता है? परन्तु इस सुगमता परभी कितने सुशिक्षित ह?

परन्तु उस भूतकाल म जब कि उत्तम अन्न, गाय से दुग्ध और दुग्ध से घृत निकालने का विचार मनुष्य को स्वप्न में भी नहीं था, उस समय में जो लोग उन सब आवश्यकताओं को दूर करके उन्नति के सोपान पर आरूढ हुए हैं, उनके गुण कैसे उत्तम और अपूर्व थे, इस समय की उच्च शिक्षा और सभ्यता की डींग मारने वाले लोग जो उस समय की प्राचीन विद्याओं को देखकर विस्मित होते हैं, और उनको प्राप्त करने की शक्ति अपने में नहीं पाते, इन अद्भुत विद्याओं को जिन लोगों ने किसी की सहायता के बिना प्राप्त किया था वह कैसे अद्भुत गुणों के लोग थे। जिस परमेश्वर को "यतो वाचो निवर्तन्तेअप्राप्यमनसासह" कहा गया है, उसके पास जिनका मस्तिष्क यहांतक पहुंचगया है, कि सब मस्तिष्क का घमण्ड उससे चूर २ हो गया और होरहा है तथा और होगा. वह लोग कैसे अद्भुत स्वभाव रखने वाले थे, कि जिनके मस्तिष्क से विज्ञान, ज्योतिष, काव्य, पुराण आदि निकल कर समस्त भूमण्डल में विद्या के प्रकाश फैलाने का कारण हुए हैं, वह किस स्वभाव के लोग थे? अब हम भी तुम्हारे सुर में सुर मिलाकर कहते हैं, कि ब्राह्मणही वर्ण भेद

तथा जाति भेद के कारण हैं, जब कि उन्होंने अपने गुणों से एक अद्भुत गुण पाया तो उसकी सदैव रक्षा के लिए और देशके लाभ के निमित्त जिससे उनका सुस्वभाव साधारण निकृष्ट गुण से मिलकर नष्ट न हो वर्ण भेद को वेदानुसार विख्यात किया इस उत्तम गुण के पश्चात् जो लोग बलवान् हुए उन्हीं को हम क्षत्रिय मानलेते हैं, उन क्षत्रिय और ब्राह्मणों से प्राचीन काल में अपनी २ श्रेष्ठता के लिए झगड़े हुए, परन्तु उससे हानि क्या है? और भी विचार करने की बात है कि "ब्राह्मणस्यमुखमासीत्" इस श्रुति के अनुसार जब कि चार वर्ण की उत्पत्ति है तब मनुजी उनके कर्मोंका विधान करते हैं यह नहीं कहते इन कर्मों का करनेवाला यह वर्ण होता है और गीता में स्वभाव लिखे हैं सो वह प्रमाण नीचे लिखते हैं।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु०

वेद पढना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान लेना देना यह छः कर्म ब्राह्मणों के वास्ते नियत किये गये. और

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ भ०गी०

मन से किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, इन्द्रियों का रोकना, पवित्रता क्षान्ति (सहना) आर्जव (सीधापन) कोमलता ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ईश्वर का मानना यह ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० ॥१
शौर्य्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभावजम् ॥ भ० गी०॥२

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, विषयों में नहीं फँसना, वेद पढ़ना यह कर्म क्षत्रिय के हेतु बनाये ॥ १ ॥ और शूरता, तेज, धृति, धैर्य, चतुरता, युद्ध से नहीं भागना, दान देना, ईश्वर में प्रीति करना यह क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ॥ २ ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥मनु०॥ १ ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् ॥ भ० गी०॥२

पशुओं की रक्षा करनी, दान करना, वेद पढना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, यह कर्म वैश्यों के अर्थ बनाये ॥ १ ॥ खेती गोपालन ब्यापार यह वैश्यों का स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयथा ॥ मनु० ॥ १
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥भं०गी०॥२

शूद्र का एकही कर्म है. निन्दा को छोडकर तीनों वर्णों की सेवा करना यह मनुजी ने ठहरा दिया है ॥ १ ॥ गीता में लिखा है शूद्र का सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

इससे यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मण को ऐसे, क्षत्रिय को ऐसे वैश्य को ऐसे और शूद्र को ऐसे कर्म करने चाहिये यह अर्थ नहीं है कि इस कर्म के करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होजाता है किन्तु चारों वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सौंपे गये जैसे कोई कहै कि यज्ञदत्त तुम यह काम किया करो तो क्या इसके यह अर्थ होंगे कि जो अमुक २ कार्य करै वोही यज्ञदत्त होता है इससे विदित हुआ यज्ञदत्त किसी पुरुष का नाम पूर्वकाल से है, अब उसको कार्य सौंपे गये हैं, यदि कर्म करने से ब्राह्मणादि

होते तो ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादिक करे वह ब्राह्मण होता है, सो यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सौंपे हैं जैसे कि पहिले तो चारों वर्णों के नाम पीछेसे उनके काम और फिर।

अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।

स्वभाव सबसे अधिक बलवान है, जिसके स्वभाव में जो बात है वह कभी नहीं जाती, गुणों से गुण अलग नहीं होता और यह भी तो सोचने की बात है कि बड़ा होना कौन नहीं चाहता यदि उपरोक्त षट् कर्मों-से ही ब्राह्मण होता तो वेद तो तीनों वर्ण पढे होते थे, क्या जो पढे हैं सो पढा नहीं सकते, जिसने यज्ञ किया है वह करा नहीं सकता, फिर तो ब्राह्मण के षट् कर्मों को सभी कोई करसकते थे और सभी ब्राह्मण होजाते सो मनुजी ने निषेध कर दिया कि और वर्ण वेद को विद्या की नहीं पढा सकते, इससे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण जाति जन्म से ही होती है नहीं तो विश्वामित्र तप न करते, यदि पढे का नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानवधर्म शास्त्र में नहीं होता और कर्म करने से जाति नहीं बदलती, परशुराम ने इक्कीसवार पृथ्वी के सब क्षत्री मारडाले वे भी ब्राह्मण थे उन्हें आज तक कोई क्षत्री नहीं कहता, द्रोणाचार्य्य अस्त्र विद्या सिखाते थे उन्हें आज तक कोई क्षत्री नहीं कहता, यह महाभारत में युद्धभी करते थे यहभी क्षत्री नहीं कहलाये ब्राह्मण ही कहलाये, फिर कर्ण जब परशुराम के पास विद्या पढने को गये तो झूँठ बोले कि मैं ब्राह्मण हूँ पीछे परशुराम ने क्षत्री जान कर शाप दिया यदि पढ़नेसे ही ब्राह्मण होते तो उन्हें क्यों छिपाना पडता, और गुण कर्म से ही उच्च वर्ण होता तो कर्ण में कौन से गुण क्षत्री के नहीं थे सभी थे, थे भी असलक्षत्री पर अपनी जाति की खबर न होनेसे सूत पुत्रनाम से विख्यात हुए थे, जिस समय द्रौपदीके स्वयम्बर में धनुष कर्ण ने उठा लिया तब उस समय द्रौपदी ने कहा कि हम सूत पुत्र को बरण नहीं करेंगी क्योंकि यह क्षत्री जाति नहीं यह सुन कर्ण ने लज्जित हो धनुष रख दिया, अब कहिये यदि गुण कर्म से जाति होती तो